CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काव्य

महाकवि हर्ष कृत

रत्नावली

अनुवादक
श्री गंगाधर इन्दूरकर साहित्यरत्न, साहित्य शास्त्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
प्रयाग

822
HAR
798

२० ३
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महाकवि हर्ष कृत

रत्नावली

अनुवादक

श्री गंगाधर इन्दूरकर साहित्यरत्न, साहित्य शास्त्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
प्रयाग

Bharatiya Vidya Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
1082

२००३

हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रत्नावली

प्रथम अंक

पादाग्र (पैरों की उँगलियों पर) पर खड़ी हुई, स्तनभार के कारण पुनः पुनः नम्र होती हुई, शंकर के सस्पृह त्रिनेत्रों (ललचाई आँखों) से देखी जाती हुई, (अतः एव) लजाती हुई, रोमांच तथा स्वेद के उद्गम से कंपित होती हुई गिरिजा द्वारा शम्भु की आराधना के लिये मस्तक से लगाई गई, समर्पित करते समय हस्तकंप से (गिरिजा तथा शंकर के मध्य में) छोड़ी गई (अतः एव) बिखरती हुई कुसुमांजली आपकी रक्षा करे ॥१॥

प्रथम समागम के समय औत्सुक्य के कारण शीघ्रता करती हुई, स्वाभाविक लज्जा के कारण लौटती हुई, सखियों की उन बातों से ('अब लजाने से क्या लाभ' आदि) पुनः सन्मुख लाई गई, सामने नर को देखकर अत्यन्त साध्वस—(भय तथा अनुराग) रस से भरी हुई, हँसते हुए शंकर द्वारा आलिंगित होकर रोमांचित होती हुई शिवा आपके कल्याण का हेतु हो ॥२॥

क्रोध से प्रदीप्त दृष्टिपात से ये तीनों अग्नि (दक्षिण गार्हपत्य तथा आहवनीय) शान्त हो गये। भय से दुखित तथा चपलगणों द्वारा उष्णीषपट्ट (पगडियों) छीने गये ऋषिगण नीचे गिर रहे हैं। दक्ष स्तुति करता है। उसकी पत्नी करुण विलाप कर रही है। इस प्रकार देवी (पार्वती) से हँसते हुए कहने वाले शिव आपकी रक्षा करें ॥३॥

चन्द्र ने (उत्कर्ष से) जीत लिया। देवताओं को नमस्कार। द्विज श्रेष्ठ निरुपद्रव हों। पृथिवी धन धान्य से समृद्ध हो। चन्द्र के समान (उज्वल) कांतियुक्त राजा प्रतापशाली हो ॥४॥

[नान्दी के अनन्तर।]

सूत्रधार—विस्तार से क्या लाभ ? राजा श्रीहर्षदेव के चरण कमलों की सेवाकर अपनी उपजीविका करनेवाले विभिन्न देशों से आये हुए राजसमूह ने आज बसन्तोत्सव के समय मुझे अत्यन्त सम्मान से

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बुलाकर कहा--"हमारे स्वामी श्री हर्षदेव ने अपूर्व कथानक वाली 'रत्नावली' नामक नाटिका की रचना को है। हम लोगों ने उसे कानों से सुना। किन्तु उसका प्रयोग न देखा। समस्त लोगों के हृदयों को आल्हादित करने वाले उस राजा के सम्मान के लिये तथा हम लोगों पर अनुग्रह करने लिये आप उसका यथाविधि अभिनय करें।" मैं इस समय नेपथ्य की रचना कर (राजाओं की) अभिलाषा पूर्ण करूँ। अरे ! निश्चय ही सहृदयों के मन खींच लिये गये हैं। क्योंकि :—

श्री हर्ष निपुण कवि हैं। यह परिषद् भी गुणग्राहिणी है। संसार में वत्सराज का चरित्र भी मनोहर है और इधर हम लोग भी अभिनय कला में निपुण हैं। इनमें से एक वस्तु भी इच्छित फल को दे सकती है। फिर मेरे सौभाग्य से यहाँ सभी गुणों का समुदाय समुपस्थित है ॥४॥

तो घर जाकर गृहिणी को बुलाकर नृत्य तथा संगीत आरम्भ करूँ। (परिक्रमा करके नेपथ्य की ओर देखकर) यह मेरा घर है। प्रवेश करूँ। (प्रवेशकर) आर्ये ! सुनो तो।

[प्रवेश कर]

नटी—आर्य पुत्र ! आ गई, क्या आज्ञा है ?

सूत्र—आर्ये ! यह राजवृन्द 'रत्नावली' देखने के लिये उत्सुक है। इस लिये नेपथ्य की तैयारी करो।

नटी—(उद्वेग से) आर्यपुत्र, अब तुम तो निश्चिन्त हो। नाचोगे क्यों नहीं ? मुझ अभागिनी को एक ही कन्या है। उसका विवाह तुमने दूर देश में करना निश्चय किया है। उस दूर देश में रहने वाले जामाता से मेरी कन्या का विवाह कैसे होगा, इस चिन्ता से मुझे अपनी सुध भी नहीं है। फिर नाच तो दूर है ?

सूत्र—आर्ये ! (वर) दूर का है यह चिन्ता मत करो। देखो।

जब भाग्य अनुकूल होता है तब वह किसी दूसरे द्वीप से, समुद्र के मध्य से अथवा दिशाओं के कोने से भी अभिस्पित (इच्छित) को शीघ्र लाकर संघटित करता है ॥६॥

[नेपथ्य में]

साधु ! भरतपुत्र ! साधु। ऐसा ही है। इसमें क्या सन्देह ? ('अनुकूल भाग्य' आदि फिर कहता है।)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूत्रधार—(सुनकर हर्ष से) आर्ये ! यह मेरा छोटा भाई यौगंधरायण की भूमिका लेकर आ ही गया। हम दोनों भी नेपथ्य की रचना के लिये प्रस्तुत हो जांय।

[दोनों का प्रस्थान]

प्रस्तावना

[यथा निर्दिष्ट यौगंधरायण का प्रवेश]

यौगंधरायण—ऐसा ही है ! इसमें क्या सन्देह। ('अनुकूल भाग्य' आदि फिर कहता है।) अन्यथा—सिद्ध के वचनों पर विश्वास रखकर याचना की गई, समुद्र में नौका के भग्न होने से डूबती हुई सिंहलेश्वर की कन्या को (काष्ठ) फलक की प्राप्ति कहाँ, और कहाँ सिहल से लौटते हुए कौशाम्बी के वाणिक् द्वारा उसकी उस अवस्था को देखकर बचाना तथा रत्नावली के चिन्ह से पहिचान कर यहाँ ले आना। (हर्ष से) ये सब हमारे स्वामी के अभ्युदय को सूचित करते हैं। (सोचकर) मैंने भी इसे सम्मान पूर्वक देवी (वासवदत्ता) को सौंपकर ठीक ही किया। और मैंने यह भी सुना है कि सिंहलेश्वर के अमात्य वसुभूति के साथ कंचुकी नाभ्रव्य भी समुद्र से किसी प्रकार बचकर कोसल विजय के लिये प्रस्थान किये हुए रुएमवान से मिल गया है। इस प्रकार मेरा स्वामिकार्य समाप्तप्राय होने पर भी मुझे (यह) भृत्यत्व धैर्य नहीं दे रहा है। क्योंकि—

स्वामी की उन्नति के लिये कार्य आरम्भ करने पर, भाग्य के भी इस प्रकार साथ देने पर और सिद्ध के वचनों में सन्देह न होने पर भी स्वेच्छाचारी होने के कारण मैं महाराज से डर सा रहा हूँ ॥७॥

[नेपथ्य में कलकल]

यौगंधरायण—(सुनकर) अरे ! मधुर बजाये जाते हुए कोमल मृदंगों के साथ होने वाले संगीत से मधुर नगरवासियों की चर्चरिका (नृत्य तथा गीत) सामने ही हो रही है। मैं समझता हूँ कि पुरवासियों के इस काम प्रचुर प्रमोद को देखने के लिये महाराज प्रासाद की ओर चल दिये हैं। वे—

जिन्होंने शरीर की कथा समाप्त कर दी है, जो रतिपति हैं, जो लोगों के मन में निवास करते हैं, जिन्हें वसन्त ऋतु प्रिय है, जो अपना महोत्सव देखने के लिये उत्सुक हैं ऐसे कुसुमायुध की तरह

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वत्सेश्वर, जो युद्ध की कथाएँ समाप्त कर चुके हैं, जो आनन्दयुक्त है, जो (प्रजा के) मन में निवास करते हैं, जिन्हें वसन्तक (वसन्तक नामक विदूषक) प्रिय है, और जो अपना उत्सव देखने के लिये उत्कंठित हैं, आ रहे हैं ॥८॥

(ऊपर देखकर) अरे ! महाराज प्रासाद के ऊपर पहुँच गये । मैं भी घर जाकर शेष कार्य की चिन्ता करूँ ।

[प्रस्थान]

विष्कंभक

वसन्त वेष धारण कर आसन पर बैठे हुए राजा तथा विदूषक का प्रवेश ।

राज—(हर्ष से देखकर) मित्र वसन्तक ।

विदू—जी महाराज ।

राजा—राज्य के सभी शत्रु पराजित हो चुके हैं । समस्त कार्यभार योग्य मंत्रियों पर सौंप दिया गया है । सम्यक् पाली पोसी हुई प्रजा समस्त उपद्रवों से रहित है । प्रद्योत की कन्या—वासवदत्ता मेरी पत्नी है । और बसन्त की तरह आचरण करने वाले तुम (मेरे मित्र हो ।) कामदेव (मदनोत्सव द्वारा) नाम से संतोष भले ही करले । किन्तु मैं समझता हूँ कि यह महोत्सव मेरा है ॥९॥

विदू—(हर्ष से) मित्र ! ऐसा नहीं । मैं समझता हूँ कि न आपका और न कामदेव का । यह मदन महोत्सव, जिसे प्रिय मित्र इतना मानते हैं, अकेले इस ब्राह्मण का है । (देखकर) किन्तु इससे क्या ? देखो । मधुपान से उन्मत्त कामिनियों द्वारा स्वयं गृहीत (होकर तथा) शृंगक (पिचकारी) के जल प्रहार से नाचते हुए नगर निवासियों के कौतूहल से युक्त, वर्तुलाकार तबले के साथ स्वच्छन्द गाई जाती हुई चर्चर (गीत विशेष) से मुखर गलियों से शोभित तथा (चारों ओर) छिटकाए हुये पिष्टातक (पीत सुगंधित द्रव्य) से पिंजरित हुई दश दिशाओं से युक्त मदनमहोत्सक की इस शोभा को देखो ।

राजा—(सहर्ष चारों ओर देखकर) पुरवासियों का आनन्द सीमा पर पहुँच रहा है । क्योंकि—

कुंकुम चूर्ण से अरुण (अतःएव) प्रभात की शोभा दिखाने वाले विकीर्ण (छिटकाए) हुए पिष्टातक पुंज से, सुवर्ण के आभूषणों की

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आभा से (तथा पीतपुष्पों के) भार से झुकी हुई चोटियों से युक्त अशोक वृक्षों से यह कौशाम्बी, जिसने (इस) परिवेष से लक्षित अपने वैभव से समस्त धनकुबेरों के कोश को जीत लिया है, मानो सुवर्ण के रस से व्याप्त (स्नात) लोगों के कारण एक मात्र पीत शोभित हो रही है ॥१०॥

फव्वारों से निरंतर निकलते हुए जल से सर्वत्र जलमय होने पर, उसी समय (स्वच्छन्द) क्रीड़ा के कारण (कुंकुमचुर्णादि के) घने विमर्दन से प्राङ्गण में कीचड़ होने पर (स्वच्छन्द) खेलती हुई प्रमदाओं के कपोल से गिरते हुए सिंदूर से अरुण चरण विन्यास के द्वारा (प्रासाद के) सामने की भूमि (फर्श) को लोग सिन्दूर वर्ण की बना रहे हैं ॥११॥

विदूषक—(देखकर) प्रिय मित्र ! चतुरजनों द्वारा किये गये जल भरे शृङ्कों (पिचकारी) के जल प्रहार के कारण से हुए सीत्कार से मनोहर वारांगनाओं के विलास को देखो।

राजा—(देखकर) मित्र ! तुमने ठीक देखा। क्योंकि।

विकीर्ण किये गये पिष्टातक के कारण चारों ओर अंधेरा होने पर मणि विभूषणों की किरणों से किंचित लक्षित होने वाले तथा उन्नत फणाकार शृङ्क (पिचकारीं) लिये हुए ये भुजंग (कामीगण) आज मुझे पाताल का स्मरण करा रहे हैं।

विदूषक—(देखकर) मित्र ! देखो, यह मदनिका चूतलतिका के साथ कामवश व्याकुल होकर वसन्त का अभिनय करके नाचती हुई इधर आ रही है।

(मदन लीला का अभिनय करती हुई तथा द्वीपदीखण्ड का गान करती हुई दो चेरियां (दासियां) प्रवेश करती हैं।)

[मदनिका गाती है।]

कुसुमायुध की प्रिय दूती, आम्र वृक्ष को मुकुलित करने वाली, मान (प्रणय मान) को शिथिल करने वाली, बकुल तथा अशोक को विकसित करने वाली, तथा उत्सुक प्रिय का मिलन कराने वाली दक्षिण वायु बह रही है। (प्रिय की) प्रतीक्षा में असमर्थ युवती समूह म्लान हो रहा है ॥१३, १४॥

अथवा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रथम वह मधु मास लोगों के हृदयों को मृदुल बनाता है। (उसके) पश्चात् अवसर प्राप्त करके काम कुसुम शरों से विद्ध करता है ॥१५॥

राजा—(गौर से देखकर) अहो ! इनकी क्रीड़ा अत्यन्त मधुर है। क्योंकि—

स्तनभार के कारण झुकते हुए मध्य प्रदेश (कटिभाग) के टूटने की ओर बिना ध्यान दिये ही उन्मत्त होकर खेलने वाली इस (चेटी) का खुला केशपाश मानों (कटिभंग) की पीड़ा से व्याकुल होकर सजाई हुई पुष्प माला की शोभा को छोड़ रहा है और (मानो उसी पीड़ा से) ये चरण नूपुर (पैंजन) द्विगुणतर (दुगना) चिल्ला रहे हैं। (उसी पीड़ा से मानो) कंप के कारण स्वभावतः व्यस्त यह हार निरन्तर इसके हृदय को ताड़न कर रहा है ॥१६॥

विदूषक—मित्र ! मैं भी इन स्त्री परिजनों के साथ नाचकर मदन महोत्सव मनाऊँगा।

राजा—(स्मित कर) मित्र ! ऐसा ही करो।

विदूषक—जो आपकी आज्ञा ! (उठकर चेटियों के साथ नाचता है।) ऐ मदनिके ! ऐ चूतलतिके ! मुझे भी यह चर्चरी सिखा दो।

दोनों—हताश ! यह चर्चरी नहीं द्विपदी खंड है।

विदू—(हर्ष से) क्या इस खंड (खांड-चीनी) से मोदक बनाये जाते हैं ?

मदनिका—(व्यंग्य से हँसकर) नहीं, नहीं ! यह पढ़ा जाता है।

विदूषक—(विषाद से) यदि पढ़ा जाता है तो इससे भगवान् बचायें। मैं प्रिय मित्र के समीप ही जाऊँगा। (जाना चाहता है।)

दोनों—आओ खेलें। वसन्तक। कहाँ जा रहे हो। (अनेक प्रकार वसन्तक को खींचती है, विदूषक बलपूर्वक चला जाता है।)

विदूषक—(राजा के पास पहुँचकर) मित्र ! नचाया गया। नहीं, नहीं। खेलकर भाग आया।

राजा—अच्छा किया।

चूत—मदनिके ! हम लोग बहुत देर तक खेल चुके। आओ। महारानी का सन्देश महाराज से निवेदन कर दें।

मदनिका—आओ ! शीघ्र चलें।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दोनों—(राजा के पास पहुँच कर) महाराज की विजय हो। महाराज। महारानी आज्ञा दे रही हैं—(अर्धवाक्य के अनन्तर लज्जा का अभिनय) नहीं, नहीं प्रार्थना कर रही है—

राजा—(सहर्ष व्यंग्य से हँसकर तथा आदर प्रदर्शित करते हुए) "आज्ञा दे रही हैं," यही रमणीय है। विशेषतः आज मदन महोत्सव के समय। कहो। देवी क्या आज्ञा दे रही हैं ?

विदूषक—आः दासीपुत्री ! क्या देवी आज्ञा दे रही हैं ?

दोनों चेटियाँ—महारानी यह प्रार्थना कर रही हैं कि 'आज मुझे मकरंद नामक उद्यान में जाकर रक्ताशोक के नीचे स्थापित भगवान कुसुमायुध की पूजा करनी है। आर्यपुत्र वहाँ साथ रहें।

राजा—(आनन्द से) मित्र ! कहना चाहिये कि एक उत्सव से दूसरा उत्सव उत्पन्न हो गया।

विदूषक—मित्र ! उठो। वहीं चलें। वहाँ जाने से इस ब्राह्मण बालक को भी स्वस्तिवायन❀ मिल जायगा।

राजा—मदनिके, देवी से निवेदन करो कि मैं मकरंदोद्यान में आ ही रहा हूँ।

दोनों चेटियाँ—जो महाराज की आज्ञा।

[प्रस्थान]

राजा—मित्र ! मकरंदोद्यान का मार्ग बताओ।

विदूषक—महाराज इधर से आएँ।

[परिक्रमा करते हैं]

विदूषक—यह है मकरंद उद्यान। आओ। प्रवेश करें।

[दोनों प्रवेश करते हैं]

विदूषक—(देखकर आश्चर्य से) महाराज ! देखो। दक्षिण वायु से विकम्पित आम्रवृक्ष की मंजरियों के पराग पुञ्जों से आबद्ध पटवितान (शामियाना) से युक्त तथा उन्मत्त मधुकरों की झंकार से मिले हुए कोकिल के 'कुहू संगीत' के कारण सुख देने वाला यह मकरंद उद्यान तुम्हारे आगमन का मानो स्वागत करता हुआ दिखाई दे रहा है। (प्रवेश करो।)

❀ स्वस्ति पाठ के अनन्तर दिया जाने वाला दान।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—(चारों ओर देखकर) मकरंदोद्यान की शोभा अनुपम है। यहाँ—

सद्यः निकलते हुए प्रवाल के समान सुशोभित किसलयों की रक्तिम आभा को धारण किये हुए, भृङ्ग-समूह के मधुर गुंजार (के व्याज) से अस्पष्ट प्रलाप करते हुए तथा दक्षिण वायु की लहरों से चंचल हुई शाखाओं (के व्याज) से पुनः पुनः घूरते हुए ये वृक्ष मानो मद्यपान कर उन्मत्त हुए दिखाई दे रहे हैं ॥१७॥

और भी,

वकुल वृक्ष* पुष्प वर्षा द्वारा मूल में (तरुणियों द्वारा) कुल्ला किये हुए मुख मद्य को सुगन्धित कर रहे हैं। आज तरुणियों के मुखचन्द्र मद्यपान से ईषद्रक्त होकर चंपक वृक्ष को चिरकाल शोभित कर रहे हैं। अशोक वृक्ष को (कुसुमित) करने के लिये किये गये (कामिनियों के) पाद प्रहार से उत्पन्न नूपुरों का निर्भर शब्द सुनकर भृङ्ग समूह अपने गुंजार से मानो (नूपुरों की) झंकार का अनुकरण आरम्भ कर रहा है ॥१८॥

राजा—मित्र ! तुमने ठीक पहिचाना।

(उज्वल वेष धारण की हुई वासवदत्ता, कांचनमाला तथा पूजा की सामग्री हाथ में ली हुई सागरिका प्रवेश करती है।)

वासव—कांचनमाले ! मकरंदोद्यान का मार्ग बताओ।

कांचनमाला—महारानी इधर से आएँ।

वासव—(परिक्रमा कर) कांचनमाले ! जहाँ मुझे भगवान कुसुमायुध की पूजा करनी है, वह रक्ताशोक का वृक्ष कितनी दूर है ?

कांचनमाला—महारानी निकट ही है। क्या आप नहीं देख रही हैं। यह है वह माधवीलता जो महारानी द्वारा स्वयं स्वीकृत किये जाते हुए तथा निरन्तर फूले हुए कुसुमों से सुशोभित है। यह दूसरी नव मालिका लता है जिसके असमय पुष्पित होने की श्रद्धा से महाराज प्रतिदिन (एक न एक उपाय) सोचते रहते हैं। इसके अनन्तर ही वह रक्ताशोक का वृक्ष दिखाई दे रहा है, जहां महारानी को पूजा करनी है।

वासव—आओ शीघ्र वहीं चलें।

---

* संस्कृत में कुछ कविप्रसिद्ध बाते हैं, जिनमें वृक्षों के सम्बध में उल्लिखित श्लोक प्रसिद्ध है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कांचनमाला—महारानी इधर से आयें।

[सब परिक्रमा करती हैं]

वासव—यह है वह रक्ताशोक का वृक्ष जहाँ मैं पूजा करूँगी। मेरी पूजा की सामग्री ले आओ।

सागरिका—(निकट जाकर) यह सब उपस्थित है।

वासव—(गौर से देख कर, स्वगत) अरे! परिचारिकाओं की असावधानी। जिसकी आँखों से (यह सागरिका) यत्नपूर्वक बचाई जाती थी, (आज) उसी को यह दृष्टिगोचर होगी। अस्तु। इस तरह कहूँगी। (प्रकट) सागरिके। मदन महोत्सव में अपनी सुधबुध भूली हुई सखियों पर सारिका को छोड़कर तुम आज यहाँ क्यों आई? शीघ्र वहीं जाओ। यह सब पूजा की सामग्री कांचनमाला को दे दो।

सागरिका—जो महारानी की आज्ञा! (कुछ दूर चलकर स्वगत) मैंने सारिका सुसंगता के हाथ सौंपी है। जिस प्रकार पिता जी के अन्तपुर में भगवान अनङ्ग पूजित होते हैं यहाँ भी उसी प्रकार, अथवा किसी अन्य प्रकार (पूजा होती है), मुझे यह देखने का कुतूहल है। छिपकर देखूँगी। (परिक्रमा कर तथा देखकर) जब तक यहाँ पूजा का समय हो रहा है तब तक मैं भी भगवान अनङ्ग की ही पूजा करने के लिये पुष्प-चयन करूँगी।

[पुष्पचयन का अभिनय करती है]

वासव—कांचनमाले! अशोक के नीचे भगवान प्रद्युम्न की स्थापना करो।

कांचनमाला—जो महारानी की आज्ञा। (स्थापना करती है।)

विदूषक—(परिक्रमाकर तथा देखकर) मित्र! नूपुर के शब्द शान्त हो जाने से मैं समझता हूँ कि महारानी अशोक वृक्ष के पास पहुँच गई।

राजा—मित्र! (तुम्हारा) यह सोचना ठीक है। देखो यह देवी हैं। जो यह—

सुकुमार* फूलों से बनी हुई, अत्यन्त क्षीण तथा निश्चित (प्रमाणबद्ध) मध्य भाग को धारण करती हुई मकरध्वज द्वारा पीठ

---

* चापयष्ठी तथा महारानी के लिये मूल में श्लेषमय समान विशेषण प्रयुक्त हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर लटकाई हुई चापयष्टी की तरह देवी, (वासवदत्ता) जो कुसुम सदृश सुकुमार शरीर वाली हैं तथा व्रत नियमादिकों के कारण जिनका मध्य (कटिभाग) अत्यन्त क्षीण है, शोभित हो रही हैं ॥१६॥

आओ! निकट चलें। (निकट जाकर) प्रिये वासवदत्ते।

वासव—क्या आर्यपुत्र! आर्यपुत्र की विजय हो। आसन ग्रहण कर इस प्रदेश को सुशोभित करें। यह आसन है। आर्यपुत्र यहाँ बैठें।

[राजा बैठने का अभिनय करता है]

कांचनमाला—महारानी! रक्ताशोक के निकट जाकर अपने हाथों से कुसुम, कुंकुम तथा चन्दन आदि समर्पित कर भगवान प्रद्युम्न की आराधना करें।

वासवदत्ता—मेरी पूजा की सामग्री ले आओ।

[कांचनमाला ले आती है। वासवदत्ता पूजा करती है।]

राजा—प्रिये!

सर्वाङ्ग❀ के (जल) सिंचन से अधिक शोभायमान, कुसुम्भ के फूल की तरह लाल लाल निकलती हुई सुन्दर किरणों से रमनीय, मकरकेतन (समुद्र) को सुशोभित करती हुई, नवीन किसलयों वाले वृक्ष से निकली हुई लता के समान तुम, जिसकी आभा अंग प्रत्यंग के मलने से फूट रही है और जिसकी साड़ी की किनारियाँ कुसुम्भ पुष्प के रङ्ग से चमक रही है, मकरकेतन (कामदेव) की आराधना करती हुई शोभित हो रही हो ॥२०॥

और भी—

प्रिये! स्मर की पूजा में संलग्न (तुम्हारे) हाथ का स्पर्श होते ही (यह) अशोक मानो निकलते हुए दूसरे किसलय से युक्त दिखाई दे रहा है ॥२१॥

अवश्य आज यह अनङ्ग अपने अनङ्गत्व की निंदा करेगा। क्योंकि इसने (शरीर के न होने से) तुम्हारे हस्तस्पर्श का आनन्द नहीं पाया ॥२२॥

❀ लता तथा महारानी के लिये मूल में श्लेषमय समान विशेषण प्रयुक्त हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कांचनमाला—भगवान प्रद्युम्न की आराधना हो चुकी। अब महाराज की पूजा कर (उनका) स्वागत करो।

वासव—पुष्प तथा चंदन ले आओ।

कांचनमाला—यह सब उपस्थित है।

[वासवदत्ता राजा की पूजा का अभिनय करती है।]

सागरिका—(फूल चुनकर) हा धिक्! हा धिक्। कुसुम के लोभ से उत्क्षुब्ध होकर मैंने बड़ी देर कर दी। (अब) इस सिन्धुवार वृक्ष से (अपने) शरीर को छिपाकर देखूँगी (देखकर) क्या अपूर्व कुसुमायुध प्रत्यक्ष ही हैं? मेरे पिता जी के अंतःपुर में चित्र की पूजा होती है। यहाँ प्रत्यक्ष देखा। मैं भी यहीं खड़ी होकर इन पुष्पों से भगवान कुसुमायुध की पूजा करूँगी (फूल फेंकती है) भगवान कुसुमायुध! तुम्हें नमस्कार है। मेरे लिये (तुम्हारा) दर्शन शुभ हो। देख लिया जो देखना था। मेरे लिये (तुम्हारा) दर्शन सफल हो। (प्रणाम करती है।)

आश्चर्य है। (एक बार) देखने पर भी पुनः दर्शनीय है। जब तक कोई मुझे न देखे उसके पहले ही (यहाँ से) चल दूँगी। (कुछ कदम चलती है।)

कांचन—आर्य वसन्तक! आओ। अब तुम भी स्वस्तिवायन स्वीकार करो।

[विदूषक आगे बढ़ता है।]

वासव—(चंदन, पुष्प तथा आभूषणों को देकर) आर्य! स्वस्तिवायन स्वीकार करो।

विदूषक—(सहर्ष स्वीकार) आपका कल्याण हो।

[नेपथ्य में वैतालिक कहता है।]

सायंकाल के समय अपनी समस्त किरणें अस्ताचल पर छोड़कर सूर्य के आकाश से चले जाने पर, नेत्रों के लिये अत्यन्त सुखद तथा कमल की कांति चुराने वाले चन्द्र* के समान (प्रजा के) नेत्रों को सुख देने वाले तथा कमल की शोभा तिरस्कृत करनेवाले आप उदयन

* चन्द्र तथा राजा के लिये मूल में समान श्लेषमय विशेषण प्रयुक्त हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(महाराज) के चरणों की सेवा करने के लिये एक साथ सभा की ओर जाता हुआ (यह) नृपसमूह ऊपर देख रहा है ॥२३॥

सागरिका—(सुनकर हर्ष से लौटती है। राजा को सस्पृह देख कर) क्या यह वही राजा उदयन है जिससे (विवाह करने के लिये) पिता जी ने मुझे (योगधारण को) समर्पित किया था। इस समय दूसरों की सेवा करने के कारण कृश हुआ मेरा शरीर इसके दर्शन से (मुझे) अत्यन्त प्रिय हो गया है।

राजा—उत्सव से चित्त आकर्षित होने के कारण हम लोगों को सध्या का अवसान भी प्रतीत न हुआ। देवि ! देखो।

पाण्डुवर्ण के मुख से हृदय-स्थित प्रिय को लक्षित करनेवाली किसी रमणी की तरह यह प्राची दिशा उदयाचल के तटों में छिपे हुए निशिपति (चन्द्र) को सूचित कर रही है ॥२४॥

देवि ! उठो। अन्दर चलें।

[सब उठकर परिक्रमा करते हैं]

सागरिका—क्या महारानी चल दीं ? अस्तु। शीघ्र जाऊँगी। (राजा को सस्पृह देखकर तथा लम्बी सांस लेकर) हा धिक्। मुझ अभागिनी द्वारा यह पुरुष चिरकाल तक देखा भी नहीं जा सका।

[प्रस्थान]

राजा—(परिक्रमा करते हुए)

देवि ! देखो। चन्द्र की शोभा को तिरस्कृत करने वाले तुम्हारे मुख कमल से पराजित हुए पंकज सहसा कान्तिहीन हो रहे हैं। तुम्हारी परिचर्या करनेवाली वारांगनाओं के संगीत को सुनकर भ्रमरियाँ मानो लज्जित होकर शनैः शनैः पुष्पों के मध्य के छिप रही हैं ॥२५॥

[सब का प्रस्थान]

[मदन महोत्सव नामक प्रथम अंक]

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीय अंक

(सारिका का पिंजरा हाथ में लटकाई हुई सुसंगता का प्रवेश)

सुसंगता—हा धिक्। हा धिक्। मेरे हाथ इस सारिका को सौंप कर मेरी प्रिय सखी सागरिका इस समय कहाँ चली गई है? मैं इसे कहाँ देखूँगी? (सामने गौर से देखकर) यह निपुणिका इधर ही आ रही है। इसी से पूछूंगी।

[निपुणिका का प्रवेश]

निपुणिका—(विस्मय से) आश्चर्य है। मैं यह मानती हूँ कि देवताओं का प्रभाव अनोखा होता है। मुझे महाराज का समाचार ज्ञात हो गया। अब जाकर महारानी से निवेदन करूँगी।

[परिक्रमा करती है।]

सुसंगता—(पास जाकर) ऐ निपुणिके! आश्चर्य से उत्क्षुब्ध होकर यहाँ खड़ी हुई मुझसे बिना बोले कहाँ जा रही हो?

निपुणिका—क्या सुसंगता है? सुसंगते। तुमने ठीक पहिचाना। यह मेरे आश्चर्य का कारण है। श्रीपर्वत से आये हुए श्रीकंठदास नामक एक धार्मिक से असमय में फूल उत्पन्न करने का दोहद (विद्या) सीख कर स्वयं स्वीकृत नवमालिका लता को आज महाराज फूलों से सजाएँगे। यही वृतांत्त जानने के लिये महारानी ने मुझे भेजा था। किन्तु तुम कहाँ जा रही हो?

सुसंगता—प्रियसखी सागरिका को खोजने।

निपुणिका—मैंने तुम्हारी प्रियसखी सागरिका को देखा है। (वह) हाथ में समुद्रक (छोटी सी पेटी) तूलिका तथा चित्रफलक लेकर कदलीगृह में प्रवेश कर रही थी। प्रियसखी के पास जाओ। मैं भी महारानी के पास जाऊँगी।

[दोनों का प्रस्थान]

[प्रवेशक।]

(हाथ में तूलिका तथा चित्रफलक ली हुई तथा मदनावस्था का अभिनय करती हुई सागरिका का प्रवेश)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सागरिका—हृदय । दया करो । दया करो । केवल आयास मात्र फल (खेद) को देने वाले (इस) दुर्लभ मनुष्य की प्रार्थना में मन लगाने से क्या लाभ ? और भी, जिसके दर्शन मात्र से तुम्हारा सन्ताप इस तरह बढ़ता है, फिर भी उसे देखना चाहते हो ?

अरे नृशंस हृदय । जन्मतः एक साथ पले हुए इस (सागरिका) को छोड़कर केवल दर्शन मात्र से परिचित मनुष्य (उदयन) का अनुगमन करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ? अथवा, तुम्हारा क्या दोष ? अनङ्ग के शरपात से भयभीत होकर तुमने आज यह आचरण किया । अस्तु । मैं अनङ्ग को ही खरी खोटी सुनाऊँगी । (आँखों में आँसू भर कर हाथ जोड़ती है तथा घुटने टेक कर) भगवान कुसुमायुध ! समस्त देवदानवों को पराजित करने वाले होकर भी तुम स्त्रियों पर हाथ चलाते हुए लज्जित नहीं होते ? (सोचकर) तुम सचमुच अनङ्ग हो । इस दुर्लक्षण से (प्रतीत होता है कि) अवश्य इस अभागिनी का मरण ही समीप आ गया है (फलक देख कर) जब तक कोई (इधर) नहीं आता, उसके पहले ही चित्रांकित (किये हुए) प्रियतम को देखकर मनचाही करूँगी । (दृढ़तापूर्वक एक चित्त होकर तथा फलक उठाकर लम्बी सांस लेती हुई) अत्यन्त साध्वस भाव (भय तथा अनुराग) के कारण मेरी हाथ की उँगलियाँ यद्यपि कंपित हो रही हैं फिर भी, उस (प्रियतम) को देखने का अन्य मार्ग नहीं हैं अतः, उसे किसी प्रकार अंकित कर देखूँगी ।

[चित्रांकन का अभिनय करती है]

[सुसंगता का प्रवेश ।]

सुसंगता—यह कदलीगृह है। चलूँ। (प्रवेश का अभिनय करती है) (प्रवेश कर तथा देखकर आश्चर्य से) यह मेरी प्रिय सखी सागरिका है। किन्तु मानों अत्यन्त अनुराग से विक्षुब्ध होकर कुछ लिखती हुई यह मेरी ओर देखती भी नहीं । (अस्तु) इसकी आँखों से बचकर देखूँगी कि यह क्या लिख रहीं है ? (चुपचाप उसके पार्श्व में खड़ी होकर तथा देखकर हर्ष से) क्या इसने महाराज को अंकित किया है ? साधु सागरिके । साधु । अथवा, राजहंसी, कमलाकर (प्रचुर कमल पूर्ण तालाब) को छोड़कर अन्यत्र मन नहीं लगा सकती ।

सागरिका—(आँखों में आँसू भरकर) मैंने इसे अंकित (तो)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया। किन्तु अनवरत होने वाली अश्रु वर्षा के कारण मेरी दृष्टि इसे देखने में समर्थ नहीं हो रही है। (मुख ऊपर कर आँसुओं को पोंछती हुई तथा सुसंगता को देखकर उत्तराय (ओढनो) से फलक को छिपाती हुई मुसकुरा कर) क्या प्रिय सखि सुसंगता है ? (उठकर उसके दोनों हाथ पकड़कर) सखी। यहाँ बैठो।

सुसंगता—(बैठकर, हठात् फलक छीन कर) सखी यह कौन है जिसे तुमने चित्रफलक पर अंकित किया है ?

साग—मदनमहोत्सव के समय भगवान अनङ्ग हैं।

सुसंगता—(मुसकुरा कर) वाह्रे तुम्हारी चतुराई ! किन्तु फिर भी चित्र सूना सा प्रतीत हो रहा है। मैं भी चित्र लेखन कर इसे रति-सहित कर दूँगी।

(तूलिका लेकर रति के व्याज से सागरिका का चित्र अंकित करती है)

सागरिका—(देखकर ईर्ष्या से) सुसंगते। तुमने मुझे यहाँ क्यों अङ्कित किया ?

सुसंगता—(मुँह बनाकर) सखी। क्यों अकारण क्रोध कर रही हो ? जिस तरह तुमने कामदेव को अंकित किया था उसी तरह मैंने रति को अंकित किया है। अन्यथा (दूसरी) ही कल्पना करने वाली ! इस झूठ बोलने से क्या लाभ ? सब समाचार कहो।

साग—(लज्जाकर, स्वगत) प्रिय सखि के द्वारा मैं पहिचान ली गई। (सुसंगता के हाथ पकड़कर, प्रकट) प्रियसखी। मुझे बड़ी लज्जा है। ऐसा करो जिससे कोई दूसरा इस वृत्तान्त को जानने न पाये।

सुसंगता—सखि। लज्जा मत करो। इसी प्रकार के पति की अभिलाषा तुम जैसी कन्याओं को होनी चाहिये। फिर भी यत्न करूँगी कि दूसरा कोई इसे जान न सकें। किन्तु इस बुद्धिमती सारिका का यहाँ होना इसका (दूसरों के जानने का) कारण होगा। कदाचित यह किसी के सामने इस संभाषण के वाक्य को लेकर बक देगी।

सागरिका—(उद्वेग से) सखि। इसलिए भी मेरा सन्ताप और बढ़ रहा है।

[मदनावस्था का अभिनय करती है।]

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुसंगता—(सागरिका के हृदय पर हाथ रख कर) सखि सावधान। सावधान इस दीर्घिका (बावड़ी) से नलिनीपत्र तथा (पद्मा-नाल) लेकर मैं शीघ्र आ रही हूँ ।

(निकल कर तथा पुनः प्रवेश कर, नलिनी पत्रों की शय्या तथा मृणल के कंकण बनाकर शेष नलिनी पत्र सागरिका के हृदय पर रखती है)

सागरिका—सखि। हटा दो इन मृणालों तथा नलिनी पत्रों को। क्यों अकारण अपने को कष्ट दे रही हो ?

प्रियसखि ! दुर्लभपुरुष से अनुराग है। अधिक लज्जा है और शरीर पराधीन है, (और यह) प्रेम भी एकांगी है। (प्रियतम मुझसे प्रेम करता है या नहीं यह अज्ञात है।) (अब मेरे लिये) एक मात्र मृत्यु ही अच्छी शरण है ॥१॥

[मूर्छित होती है।]

सुसंगता—(करुण स्वर से) प्रियसखि सागरिके। सावधान। सावधान।

[नेपथ्य में कलकल]

तोड़ने के पश्चात् बची हुई सोने की जंजीर को खींचता हुआ। यह वानर, जो अश्वशाला से भाग रहा है, जिसने एक के पश्चात एक द्वारों का उल्लंघन कर स्त्रियों को भयभीत कर दिया है, अश्वरक्षक घबरा कर जिसका पीछा कर रहे हैं तथा जिसने खेलते समय चंचल (अतः एव) बजते हुए चरणनूपुरों को धारण किया है, नृपति के अन्तःपुर में घुस रहा है ॥२॥

और भी,

पुरुषों में गणना न होने के कारण नंपुसक लोग छिप गये। यह वामन (बौना) घबराकर कंचुकि के चांगे में घुस रहा है। समीपवर्ती किरातों❀ ने अपने नाम सदृश ही आचरण किया। अपने देख जाने की शंका करने वाली कुब्जाएँ झुककर शनैः शनैः चल रही हैं ॥३॥

सुसंगता—(सुनकर सामने देखती है। घबराकर उठती हुई सागरिका का हाथ पकड़ कर।) सखि। उठो। उठो। यह दुष्ट वानर इधर ही आ रहा है।

❀ संस्कृत में किरात का अर्थ सतत भागने वाला भी होता है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सागरिका—अब क्या करें ?

सुसंगता—आओ। इस तमाल वृक्ष के अंधकार में घुसकर इसे जाने दें।

[परिक्रमा कर डर से देखती हुई एकान्त स्थान पर खड़ी होती है]

सागरिका—सुसंगता तुमने चित्र फलक कहाँ फेंक दिया ? कदाचित् कोई उसे देख लेगा।

सुसंगता—अरी स्वस्थ चित्तवाली ! अब चित्रफलक लेकर क्या करोगी ? दहीभात की अभिलाषा से यह दुष्ट वानर पिंजरा खोलकर चंपत हो गया। यह बुद्धिमती सारिका उड़ती हुई दूर जा रही है। चलो। शीघ्र इसका पीछा करें।

[परिक्रमा करती हैं।]

[नेपथ्य में]

अहाहा। आश्चर्य है। आश्चर्य है।

सागरिका—(देखकर) सुसंगते ! प्रतीत होता है कि वही दुष्ट वानर पुनः आ रहा है।

सुसंगता—(देखकर हंसती हुई) अरी कायर। डरो मत। महाराज का पार्श्ववर्ती यह आर्य वसन्तक है।

[वसन्तक का प्रवेश।]

वसंतक—अहाहा ! आश्चर्य है। आश्चर्य है। साधु। धार्मिक श्री खंडदास। साधु।

सागरिका—(सस्पृह देखती है) सखि सुसंगते। यह पुरुष दर्शनीय है।

सुसंगता—अरी स्वस्थचित्त वाली ! यहाँ रुककर क्या होगा। सारिका दूर चली गई। आओ पीछा करें।

[प्रस्थान।]

वसंतक—साधु ! धार्मिक श्रीखंडदास। साधु। दोहद संस्कार को करते ही वह नवमालिका ऐसी हो गई कि निरंतर फूले हुए असंख्य पुष्प गुच्छों से (अपने आश्रम भूत) वृक्ष को आच्छादित करने वाली स्वयं महारानी द्वारा स्वीकृत माधवीलता का उपहास करती सी दिखाई दे रही है। चलकर प्रिय मित्र को निवेदन करूँ। (परिक्रमा कर देखते

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हुए) यह मेरा प्रिय मित्र उस दोहद संस्कार का प्रत्यय पाकर अप्रत्यक्ष उस नवमालिका को प्रत्यक्ष देखता हुआ (अतःएव) हर्ष से प्रफुल्ल नेत्र होकर इधर ही आ रहा है। उसके निकट जाऊँ।

[राजा के समीप जाता है]

[उल्लिखित रूप में राजा का प्रवेश]

राजा—(हर्ष से)

*तीव्र उत्कंठा से युक्त, पांडुर (पीली) कांति को धारण करने वाली, जँभाई लेती हुई, निरंतर श्वास प्रश्वास के द्वारा अपना कष्ट बढ़ाती हुई किसी स्त्री के समान इस उद्यानलता को, जिसकी कलियाँ स्वच्छन्द निकल रही हैं (पुष्पोद्गम से) जिसकी कांति पांडुर है, जिसका विकास प्रारंभ हो गया है, जो एक क्षण वायु के उद्गम से अपना आयास (विस्तार) बढ़ा रही है, देखता हुआ मैं देवी (वासव दत्ता) के मुख को क्रोध से लाल कर दूँगा ॥४॥

वसंतक—(सहसा आगे बढ़कर) प्रिय मित्र की विजय हो। मित्र ! बधाई है। जिस दोहद संस्कार को करते ही वह नव मालिका ऐसी हो गयी कि, निरंतर फूले हुए असंख्य पुष्प गुच्छों से (अपने आश्रय) वृक्ष को आच्छादित करने वाली स्वयं महारानी द्वारा स्वीकृत माधवीलता का उपहास करती सी दिखाई दे रही है।

राजा—मित्र ! इसमें क्या सन्देह। मणि, मंत्र तथा औषधियों का प्रभाव अचिन्तनीय होता है। देखो—

समरांगण में (उपस्थित) पुरुषोत्तम के कंठ में कौस्तुभ मणि को देखकर शत्रु संमरागण से भाग गये। मंत्रो के द्वारा ताड़ित होकर सर्प पृथ्वी पर निवास करते हैं। प्राचीन काल में जो वीर लक्ष्मण तथा वानर योद्धागण मेघनाद द्वारा मारे गये वे असंख्य गुणवाली महौषधि को पीकर पुनः जीवित हो गये ॥५॥

मकरंद उधान का मार्ग दिखाओ जिससे आज (नवमालिका को) उसे देखकर मैं नेत्रों को सफल बनाऊँगा।

वसंतक—(सगर्व) आप इधर से आये।

राजा—आगे चलो।

---

* लता तथा स्त्री के लिये मूल में श्लेषमय समान विशेषण प्रयुक्त हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[दोनों सगर्व परिक्रमा करते हैं।]

वसंतक—(सुनकर, भय से लौटकर तथा राजा को हाथ से पकड़कर, घबराता हुआ) मित्र ! आओ। भाग चलें।

राजा—क्यों ?

वसंतक—इस बकुल वृक्ष पर कोई भूत रहता है।

राजा—धिक् मूर्ख। निशंःक चलो। यहाँ (आने के लिये) इन लोगों को कहाँ सामर्थ्य है ?

वसंतक—स्पष्ट तो बोल रहा है। यदि मेरी बातों पर विश्वास नहीं तो आगे बढ़कर स्वयं ही सुन लो।

राजा—(आगे बढ़कर तथा सुनकर)

जिस कारण इस (भाषण) के शब्द स्पष्ट हैं, स्त्रीत्व (स्त्रियों के शब्द) होने के कारण मधुर हैं, कोई छोटी चिड़िया होने के कारण (शब्द) धीमें है, (अत:) मैं समझता हूँ कि सारिका बोल रही है ॥६॥

(ऊपर गौर से देखकर) क्या सारिका है ?

वसंतक—(विचारकर) क्या सचमुच सारिका है ?

राजा—(मुसकुरा कर) मित्र ! हाँ (सचमुच)।

वसंतक—मित्र ! तुम कायर हो जो सारिका को भूत समझते हो।

राजा—धिक् मूर्ख। अपना किया हुआ मुझ पर लगाते हो।

वसंतक—यदि ऐसा है तो (अब) मुझे रोकना मत। (क्रोध से दंड उठा कर) आः। दासी पुत्री। तुम समझती हो कि वसंतक सचमुच कायर है। क्षण भर रुको। दुर्जनों के हृदय की तरह कुटिल इस दंड से पके हुए कैथे की तरह बकुल वृक्ष से मार कर नीचे गिरा दूँगा।

राजा—(रोकता हुआ) मूर्ख। यह कुछ मधुर बोल रही है। क्यों इसे तंग करते हो सुनें।

[दोनों सुनते हैं]

वसंतक—यह कहती है कि इस ब्राह्मण को भोजन दो।

राजा—उदर प्रियो की सभी बातें भोजन में समाप्त होती है सच कहो सारिका क्या बोल रही है।

वसंतक—(सुनकर) मित्र, सुना तुमने, जो इसने कहा ? यह कहती है, "सखि, यह कौन है जिसे तुमने चित्र फलक पर अंकित किया है। मदन महोत्सव के समय भगवान अनङ्ग है।" फिर कहती है

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"यहाँ तुमने मुझे क्यों अंकित किया ? सखि । क्यों अकारण क्रोध कर रही हो । जिस तरह तुमने कामदेव को अंकित किया था उसी तरह मैंने रति को अंकित किया है । अन्यथा (दूसरी ही) कल्पना करने वाली, इस झूठ बोलने से क्या लाभ ? सब समाचार कहो" मित्र यह क्या (बात) है ?

राजा—मैं ऐसा सोचता हूँ कि किसी (कामिनी) ने अनुराग से अपने प्रियतम को अंकित कर सखी से कामदेव के व्याज से छिपाया । उसकी सखी ने भी पहिचान कर उसे (कामिनी को) भी वहाँ अंकित कर रति के व्याज से प्रदर्शित कर दिया ।

वसंतक—(चुटकी बजाकर) मित्र ! बात बैठती है ।

राजा—मित्र ! चुप रहो । फिर (वह) कुछ बोल रही है । सुनें ।

[दोनों सुनते हैं]

वसंतक—यह फिर ऐसा कह रही है । "सखि । लजाओ मत । इसी प्रकार के पति की अभिलाषा तुम जैसी कन्याओं को होनी चाहिये ।" मित्र । पंडित होने का अभिमान मत करो । मैं इसके मुख से सुनकर बता दूँगा । वह कन्या, जो अंकित की गयी है, दर्शनीय है ।

राजा—यदि ऐसा है तो सावधान होकर सुनें । यहाँ हम लोगों के कौतुहल के लिये अवसर है ।

[दोनों सुनते हैं]

वसंतक—मित्र । सुना तुमने, जो इसने कहा ? "सखि । अतः मेरा सन्ताप और भी बढ़ रहा है । हटा दो इन मृणालों (पद्मनाल) तथा नलिनीपत्रों को । क्यों अकारण अपने को कष्ट दे रही हो ?"

राजा—मित्र । न केवल सुना, अपितु (उसका) अभिप्राय भी समझ गया ।

वसंतक—मित्र ! अभी यह दासी पुत्री सारिका कुड़बुड़ा रही है । मैं सब सुनकर तुम्हें निवेदन करूँगा ।

राजा—ठीक कहते हो ।

[फिर सुनते हैं ।]

वसंतक—मित्र ! यह दासी पुत्री सारिका चतुर्वेदी ब्राह्मण की ऋचायें गा रही है ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—मित्र। कहो। अन्य मनस्क होने के कारण मैंने नहीं सुना। इसने क्या कहा ?

वसंतक—इसने कहा :—

प्रिय सखि। दुर्लभ पुरुष पर अनुराग है। शरीर पराधीन है (और यह) प्रेम एकांगी है। (प्रियतम का भी प्रेम मुझ पर है या नहीं यह मुझे अज्ञात है।) (अब मेरे लिये) एक मात्र मृत्यु ही अच्छी शरण है।

राजा—(मुसकुरा कर) आप ऐसे ब्राह्मण को छोड़कर दूसरा कौन इस प्रकार की ऋचाओं का ज्ञाता हो सकता है ?

वसंतक—तो फिर यह क्या है ?

राजा—यह गाथिका है।

वसंतक—क्या गाथिका ? (इसमें) क्या कहा गया है।

राजा—मित्र ! किसी श्लाध्य यौवना स्त्री ने, जो प्रियतम को न पा सकी हैं जीवन से उदासीन होकर कहा है।

वसंतक—(जोर से हँसकर) इन वक्रोक्तियों से क्या लाभ ? सीधे से यह क्यों नहीं कहते कि, जो मुझे ही नहीं पास की है"। अन्यथा और कौन है जो कुसुमायुध के व्याज से छिपाया जा सके ? (ताली बजाकर जोर से हँसता है।)

राजा—(ऊपर देखकर) धिक मूर्ख। जोर से हँसकर तुमने इस तपस्विनी को डरा दिया, जिससे वह उड़कर कहीं दूर चली गयी।

[दोनों देखते हैं]

वसंतक—(देखकर) मित्र ! कुछ और मत सोचो वह कदलीगृह की ओर ही गयी है। चलो उसका अनुगमन करें।

[दोनों परिक्रमा करते हैं]

राजा—अत्यंत कठिन मदन व्यथा से पीड़ित हुई कामिनियों द्वारा सखियों के सामने जो कुछ कहा जाता है बालक, तोते, तथा सारिकाओं से पुनरुक्त होकर पुण्यवान लोगों के कानों से सुना जाता है ॥७॥

वसन्तक—मित्र ! यह है कदलीगृह। प्रवेश करें।

[दोनों प्रवेश करते हैं]

वसंतक—दासी की पुत्री सारिका के अन्वेषण का प्रयत्न समाप्त

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करो। दक्षिण पवन से दोलायमान कदलीदल के द्वारा शीतल हुई इस शिला पर क्षण मात्र विश्राम करें।

राजा—जो आपको अभिमत हो।

[दोनों बैठते हैं।]

राजा—(लम्बी सांस लेकर)

(अत्यंत कठिन मदनव्यथा से पीड़ित आदि फिर कहता है)

वसंतक—(पीछे की ओर देखकर) मित्र ! यहाँ दुष्ट वानर द्वारा खोला गया सारिका का पिंजरा होगा।

राजा—मित्र ! देखो।

वसन्तक—जो आपकी आज्ञा ! (परिक्रमा कर तथा देखकर) यह चित्रफलक भी है। उठा लूँ (उठाकर गौर से देखता हुआ हर्ष का अभिनय करता है।)

राजा—(कौतूहल से) मित्र यह क्या है ?

वसंतक—मित्र ! बधाई है। यह वही है जो मैंने कहा था। तुम ही यहाँ अंकित किये गये हो। अन्यथा और कौन है जो कुसुमायुध के व्याज से छिपाया जा सके ?

राजा—(हर्ष से हाथ फैलाकर) मित्र ! दिखाओ।

वसन्तक—तुम्हें न दिखाऊँगा। वह कन्या भी यहाँ अंकित है। बिना किसी पुरस्कार को लिये इस प्रकार का कन्या रत्न कहीं दिखाया जाता है ?

राजा—(कंकण देता हुआ हठात् (फलक) छीनकर देखता है।) (देखकर विस्मय से) मित्र। देखो, देखो।

(गमन की) *लीला से कमलों को कंपित करने वाली, जल में पंखों को फड़फड़ा कर (अपना आगमन) हमें बताती हुई, विचित्र रीति से चलने वाली तथा मानस (सरोवर) को जाती हुई, राजहँसी की तरह चित्रांकित यह कौन है, जिसने अपनी शोभा से लक्ष्मी को तिरस्कृत कर दिया है, जो मेरे प्रति अनुराग प्रकट कर रही है तथा जो मेरे मन में प्रवेश कर रही है ? ॥८॥

---

* राजहँसी तथा चित्रगत सागरिका के लिये मूल में श्लेषमय समान विशेषय प्रयुक्त हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और भी :—

अपूर्व पूर्ण चन्द्र से युक्त इसके मुख्य को बनाकर ब्रह्मा अवश्य अपने आसन कमल के बन्द होने से दुखित हुए होंगे ॥६॥

[सागरिका तथा सुसंगता का प्रवेश ।]

सागरिका—सखि ! सुसंगते । हम लोगों को सारिका मिल गयी । उस चित्रफलक को भी इस कदलीगृह से लेकर शीघ्र लौट आयें ।

सुसंगता—सखि ! ऐसा ही करें !

[निकट जाती हैं]

वसंतक—मित्र ! किन्तु यहाँ अवनतमुखी क्यों अंकित की गई है ?

सुसंगता—(सुनकर) सखि ! वसंतक की ध्वनि सुनाई देने के कारण मैं समझती हूँ कि महाराज भी यहीं होंगे । इस कदलीगृह के खंभों में छिपकर देखें ।

[दोनों सुनती हैं ।]

राजा—मित्र ! देखो—

("अपूर्व पूर्ण चन्द्र से युक्त" आदि फिर कहता है ।)

सुसंगता—सखि ! बधाई है । यह तुम्हारा हृदय वल्लभ तुम्हारा ही वर्णन कर रहा है ।

साग—(लज्जा से) सखि ! क्यों (अपनी) परिहास की आदत से मुझे छोटी बना रही हो ?

वसंतक—(राजा को हिलाकर) मैं पूछता हूँ कि यह अवनत-मुखी यहाँ क्यों अंकित की गई है ।

राजा—मित्र ! सारिका ने ही सब कह दिया है ।

सुसंगता—(हँसती हुई) सखि ! सारिका ने अपनी बुद्धिमत्ता प्रदर्शित कर दी ।

वसंतक—किन्तु तुम्हारी आँखे सुख पा रही है या नहीं ?

साग—(स्वगत) अरेरे (ये अब) क्या कहेंगे ? सचमुच ही मैं (इस समय) जीवन मरण के बीच हूँ ।

राजा—'सुख पा रही हैं' (यह) क्या कहना चाहिये ?

अत्यंत कठिनाई से दोनों जंघाओं का अतिक्रमण कर तथा चिर-

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काल नितम्ब प्रदेश में भ्रमण कर त्रिवली के कारण दुर्गम इसके मध्य भाग में निचेष्ट हुई मेरी दृष्टि (इसके) दोनों उन्नत स्तनों पर शनैः शनैः चढ़कर मानों तृषार्त होकर जलविंदु गिराने वाले दोनों नेत्रों की ओर साकांक्ष पुनः पुनः देख रही है ॥१०॥

सागरिका—(सुनकर स्वगत) हृदय ! दया करो । दया करो । सावधान । सावधान । इस समय तुम्हारा मनोरथ भी यहाँ तक पहुँच गया ।

सुसंगता—सखि ! तुमने सुना ?

सागरिका—(हँसकर) तुम्ही सुनो ! जिसके चित्रकला की प्रशंसा हो रही है ।

वसंतक—(फलक को गौर से देखकर) जो इस प्रकार के भी प्रिय के समागम को अधिक समझता है वह क्यों इतना अपना अनादर करता है । क्योंकि तुम उसी के द्वारा अंकित किये गये अपने को नहीं देख रहे हो ।

राजा—(गौर से देखकर) मित्र ! इसके द्वारा मैं अंकित किया गया, सचमुच यह मेरा बड़ा सम्मान है । देखता क्यों नहीं हूँ ।

अंकित करते समय, जो वाष्पजल के तुषार गिरे वे मेरे शरीर पर उसके करतल के स्पर्श से उत्पन्न हुये स्वेदकण के समान शोभित हो रहें हैं ॥११॥

सुसंगता—सखि ! तुम्हीं धन्य तथा प्रशंसनीय हो जिसके कारण महाराज इस प्रकार सन्तुष्ट होते हैं ।

वसंतक—(पीछे देखकर) मित्र ! सरस कमलिनी-दलों से तथा मृणाल से बनी हुई मदनावस्था सूचक (शय्या) दिखाई दे रही है ।

राजा—मित्र ! ठीक पहिचाना । क्योंकि,

विशाल स्तन तथा जँघाओं के संबन्ध से दोनों ओर से अत्यन्त म्लान, स्तन के मध्य भाग से मिलन न पाकर मध्य में हरी तथा शिथिल हुई भुजाओं के उद्वेलन से बिखरी हुई यह नलिनी पत्रों की शय्या कृशांगी के परिताप को कह रही है ॥१२॥

और भी,

यह हृदय पर रखा हुआ कमलिनी पत्र वर्तुलाकर चिन्हों के द्वारा अत्यंत (मदन) सन्ताप के कारण म्लान शरीर वाली इसके

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्तनयुगल की जिस तरह विशालता कहता है, उस तरह हृदय की मदन वश हुई दशा को नहीं कहता है ॥१३॥

वसंतक—(मृणालिका के उठाने का अभिनय कर) मित्र ! यह दूसरा उसी के विशाल स्तनों पर रखने योग्य मुरझाता हुआ कोमल मृणालों का हार मिला है। (इसे) आप देखें।

राजा—(लेकर हृदय पर रख कर उपालंभ पूर्वक) अरे जड़ प्रकृति।

मृणालहार ! उसके स्तन कुँम्भों के मध्य से तुम पतित हुए, (इसलिये) क्यों सूख रहे हो। अरे ! तुम्हारे नक सूक्ष्मतंतु को भी वहाँ स्थान नहीं है, (फिर) तुम्हें (वहां) कैसे (स्थान) हो ॥१४॥

सुसंगता—(स्वगत) हाधिक्। हाधिक्। अत्यंत अनुराग से उत्क्षुब्ध होकर महाराज असंबद्ध प्रलाप कर रहे हैं। इसके आगे उपेक्षा करना उचित नहीं है (प्रगट) सखि ! जिसके लिये तुम यहाँ आई वह यह उपस्थित है।

सागरिका—(असूया के साथ) सखि ! मैं किसके लिये यहाँ आई ?

सुसंगता—(व्यंग्य से हँसकर) अरी ! दूसरी शंका करने वाली। चित्रफलक के लिये। उसे उठा लो।

साग०—(रोष से) इस प्रकार की बातों में तुम निपुण हो मैं दूसरी ओर जाऊँगी। (जाने की चेष्टा करती है।)

सुसंगता—अरी असहने। क्षणभर रुको। मैं ही इस कदलीगृह से चित्रफलक लेकर आ रही हूँ।

साग०—सखि ! ऐसा ही करो।

सुसंगता—ऐसा ही करूँगी।

[कदलीगृह की ओर परिक्रमा करती है]

वसंतक—(सुसंगता को देखते ही घबड़ाता हुआ) मित्र ! इस चित्रफलक को कदलीदल से छिपाओ। यह महारानी की परिचारिका सुसंगता आ गई।

राजा—(कपड़े के छोर से फलक को आच्छादित करता है।)

सुसंगता—(आगे बढ़कर) महाराज की विजय हो।

राजा—सुसंगते। आपका स्वागत है। यहाँ बैठिये।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[सुसंगता बैठती है।]

राजा—मैं यहाँ हूँ, यह आपको कैसे ज्ञात हुआ ?

सुसंगता—(व्यंग्य से हँसकर) न केवल महाराज को, किन्तु चित्रफलक के साथ सब समाचार भी मैंने जान लिया। (अभी) जाकर मैं महारानी से निवेदन करूँगी।

[जाने की चेष्टा करती है।]

वसंतक—(भय से तथा जनान्तिक) मित्रा सब कुछ हो सकता है। यह गर्भदासी वाचाल है। इसे सन्तुष्ट करो।

राजा—तुमने ठीक कहा। (सुसंगता को हाथ से पकड़ कर) सुसंगते। यह केवल खेल था। अकारण तुम देवी को कष्टमत देना। तुम्हारा यह पुरस्कार है (कान से आभूषण उतार कर देने लगता है)

सुसंगता—(स्वगत) महाराज प्रसन्न हैं। (प्रगट) शंका न करें। महारानी की कृपा से मैं बहुत खेल चुकी। "तुमने मुझे यहाँ क्यों अंकित किया ?" यह कहकर कुपित हुई मेरी प्रिय सखि सागरिका को प्रसन्न कर दें। यही मेरे लिये (आपकी) बड़ी कृपा होगी।

राजा—(सहसा उठकर) सुसंगते ! वह कहाँ है ?

सुसंगता—महाराज ! इस कदलीगृह में खंभों में छिपी खड़ी है।

राजा—मार्ग बताओ।

सुसंगता—महाराज इधर से आयें।

[परिक्रमा करते हैं।]

वसंतक—मैं इस चित्रफलक को लेता हूँ। इसका काम पड़ेगा (चित्रफलक लेता है)

सागरिका—(राजा को देखकर हर्ष, साध्वस तथा कम्पयुक्त होकर स्वगत्) हा धिक्। हा धिक्। इसे देखकर अत्यंत साध्वंस भाव के कारण मैं एक पैर भी चल नहीं सकती। अब मैं क्या करूँगी ?

वसंतक—(सागरिका को देखकर) अहा ! आश्चर्य है। मानव संसार में इस प्रकार की कन्या नहीं दिखाई देती। मैं सोचता हूँ कि इसका निर्माण कर ब्रह्मा को भी विस्मय हुआ होगा।

राजा—मित्र ! मेरे मन में भी यही है।

त्रैलोक्य की अलंकार भूत इस ललना का निर्माण कर आश्चर्य

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के कारण ब्रह्माने अवश्य ही (अपने) सिर कंपित किये। अपने (आसन के) कमल पत्रों की शोभा जीती जाने के कारण (कमलासन ने) अपनी आँखे फैला दीं। चारों मुखों के द्वारा एक साथ "साधु। साधु।" यह कहा ॥१५॥

सागरिका—(असूया से सुसंगता को देखकर) सखि! (तुमने) इस तरह का चित्रफल लाया है?

[जाने लगती है।]

राजा—भामिनी! यद्यपि तुम क्रोध से इस पर (सुसंगता पर) दृष्टिपात कर रही हो फिर भी (तुम्हारी) यह स्निग्ध दृष्टी रूखी नहीं हो रही है। शीघ्रता छोड़कर गमन करो (क्योंकि) चरण स्खलन के कारण तुम्हारा यह विशाल नितम्ब अत्यंत दुःखी होगा ॥१६॥

सुसं०—महाराज! यह अत्यंत क्रोधी है। इसको उँगलियों द्वारा पकड़कर प्रसन्न करें।

राजा—(सानंद) जैसा आप कहें। (सागरिका को हाथ से पकड़ कर स्पर्शसुख का अभिनय करता है।)

वसंतक—तुमने यह अपूर्व लक्ष्मी प्राप्त कर ली है।

राजा—मित्र! सच है।

यह लक्ष्मी है। इसके कर भी पारिजात के पल्लव हैं। अन्यथा स्वेद के व्याज से यह अमृत कैसे चू रहा है? ॥१७॥

सुसंगता—सखि! तुम अत्यंत निष्ठुर हो तुम महाराज के हाथ का अवलंब पाकर भी क्रोध नहीं छोड़ रही हो?

साग०—(भृकुटि चढ़ा कर) सुसंगते! अब भी तुम चुप न रहोगी।

राजा—प्रिये सागरिके। इस प्रकार सखियों पर क्रोध करना उचित नहीं।

वसंतक—आप किसी बुभुक्षित ब्राह्मण की तरह क्यों क्रुद्ध हो रही हैं।

साग—सखि! तुमसे (अब मैं) न बोलूँगी।

वसंतक—यह दूसरी महारानी वासवदत्ता है।

राजा—(चकित होकर सागरिका का हाथ छोड़ता है।)

साग—(घबराकर) सुसंगते। अब क्या करूँगी?

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुसंगता—सखि ! इस तमाल वृक्ष से छिपकर यहाँ से निकल चलें ।

[दोनों का प्रस्थान]

राजा—(पीछे देखकर आश्चर्य से) कहाँ है वह देवी वासवदत्ता ?

वसंतक—ऐसा है । "चिरकाल क्रोध करने के कारण वह दूसरी वासवदत्ता है ।" यह मैंने कहा ।

राजा—धिक् मूर्ख ।

*किसी प्रकार भाग्य से प्राप्त हुई (अपना) तेज प्रगट करती हुई, गले में पहिनने के पूर्व ही तुम्हारे द्वारा मेरे हाथ से गिराई गई (किसी) रत्नावली (रत्नमाला) की तरह वह कान्ता, जो किसी प्रकार भाग्य से प्राप्त हुई थी, जिसने गले लगने के पहिले ही (अपना) अनुराग प्रगटकर दिया था, मेरे हाथ से तुम्हारे द्वारा छुड़ाई गई ॥१८॥

[वासवदत्ता तथा कांचनमाला का प्रवेश ।]

वासव—कांचनमाले ! स्वयंआर्यपुत्र द्वारा स्वीकृत वह नवमालिका की लता अभी कितनी दूर है ?

कांचन—इस कदलीगृह के आगे (ही) दिखाई दे रही है ।

वास—मार्ग बताओ । वहीं चलें ।

कांचन—महारानी इधर से आयें ।

[परिक्रमा करती हैं ।]

राजा—मित्र प्रियतमा को मैं कहाँ देखूँ ?

कांचन—महारानी । समीप ही महाराज बोल रहे हैं । समझती हूँ कि महारानी की ही प्रतीक्षा कर रहे हैं । महारानी । आगे बढ़ें ।

वासवदत्ता—(निकट जाकर) आर्य पुत्र की विजय हो ।

वसंतक—(बगल में चित्रफलक रखकर उत्तरीय आच्छादित करता है ।) महारानी आ गयीं ?

राजा—(जनान्तिक) मित्र चित्रफलक छिपाओ । देवि स्वागत है । यहाँ बैठिये ।

---

* रत्नावली तथा कान्ता के लिए मूल में श्लेषमय समान विशेषण प्रयुक्त हैं ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वास—(बैठकर) आर्य पुत्र ! सचमुच नवमालिका लता फूल उठीं।

राजा—(स्मित होकर) देवी ! पहले आने पर भी तुम देर करोगी, अतः अभी नहीं देखी ? चलो साथ ही देखें।

वास—(गौर से देखकर) आर्यमुत्र। मुख की लालिमा से मैंने समझ लिया कि वह नवमालिका फूल उठी है। वहाँ जाऊँगी।

वसंतक—यदि ऐसा है तो हम लोगों ने जीत लिया (हाथ फैला कर नाचता है) (बगल से गिरे चित्रफलक को देखकर विषाद का अभिनय करता है)

राजा—(जनान्तिक उँगली दिखाते हुए वसंतक के मुख की ओर देखता है।)

वसंतक—(जनान्तिक) क्रोधमत करो। तुम रुको। मैं यह (उत्तर देना) जानता हूँ।

कांच—(फलक उठाकर) महारानी देखें। इस चित्रफलक पर क्या अंकित किया गया है ?

वास—(गौर से देखकर) स्वगत, यह आर्यपुत्र हैं और यह सागरिका है (प्रगट) (राजा से)—आर्यपुत्र ! यह क्या है ?

राजा—(दैन्य दिखकर जनांतिक) मित्र क्या कहूँ ?

वसंतक—मित्र चिंता मत करो। मैं उत्तर दूँगा (प्रगट, वासवदत्ता से) आत्मचित्र कष्ट से अंकित होता है। मेरे इन वचनों को सुनकर प्रियमित्र ने अपना (चित्रकला) ज्ञान प्रदर्शित किया है।

राजा—वसंतक ने जो कहा वैसा ही है।

वासवदत्ता—(सफलक दिखाकर) और जो तुम्हारे समीप अंकित की गयी है वह क्या वसंतक का (चित्रकला का) ज्ञान है ?

राजा—(दीन हँसी हँसता हुआ) देवि ! दूसरी शंका मत करो। यह कन्या अपने मनसे ही कल्पना कर अंकित की है। (यह) पहले (कभी) देखती नहीं हैं।

वसंतक—सचमुच यज्ञोपवीत की शपथ, यदि कभी इसे हम लोगों ने पहले देखा हो।

कांचन—(जनान्तिक) महारानी ! कदाचित इस प्रकार घुणाक्षर (न्याय) हो सकता है। क्रोध मत करो।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वासवदत्ता—(छिपाकर) अरी सरल ! इसकी वक्रोक्तियां नहीं जाँचती । यह वसन्तक है (प्रगट राजा के प्रति) आर्यपुत्र । इस चित्र को देखकर मेरे शिर में पीड़ा उत्पन्न हुई है । आर्यपुत्र सुख से रहें । मैं जाऊँगी । (उठकर जाने की चेष्टा करती है)

राजा—(अंचल पकड़कर) देवि !

प्रियतमे, इस समय क्या कहना ठीक है यह मैं नहीं समझ रहा हूँ । (यदि) 'दया करो' कहूँ तो क्रोध के (प्रगट) न होने पर यह उचित नहीं है । "फिर ऐसा नहीं कहूँगी" (यह कहें) तो (अपराध की) स्वीकृति हो जायगी । "इसमें मेरा दोष नहीं है" (यह कहूँ) तो तुम यह भी झूट समझोगी ॥१६॥

वास—(सविनय अंचल खींचती हुई) आर्यपुत्र ! कुछ और मत सोचो । सचमुच मुझे शिर वेदना कष्ट दे रही है । जाऊँगी ।

[दोनों का प्रस्थान]

वसंतक—बधाई है । असमय के बादलों की तरह यह वासवदत्ता कुशलपूर्वक चली गयी ।

राजा—धिक् मूर्ख ! संतोष मत करो । जाते समय छिपा हुआ देवी का क्रोध तुमने नहीं देखा । देखो—

भृकुटियाँ सहसा टेढ़ी होने पर भी (उसने) मुखको अत्यंत नम्र बना लिया उसने मेरे प्रति ईषत् मर्मभेदी हास्य किया (किन्तु) निष्ठुर वचन न कहे । अन्तः (भीतर) वर्तमान आँसुओं से जलमय हुई आँखें (क्रोध रोकने के) सामर्थ्य से विकसित न होने दी । (इस प्रकार उसने) कोप भी प्रकट किया तथा विनय भी स्त्री (वासवदत्ता) ने न छोड़ी ॥२०॥

वसंतक—देवी वासवदत्ता चली गयी । क्यों तुम अरण्य रोदन कर रहे हो ?

राजा—तो आओ ! देवी को प्रसन्न करने के लिये (अन्तपुर के) अन्दर चलें ।

[प्रस्थान ।]

कदलीगृह नामक द्वितीय अंक ।

—०:०—

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तृतीय अंक

[प्रवेशक]

[मदनिका का प्रवेश ।]

मदनिका—(आकाश की ओर देखकर) कौशम्बिके ! क्या तुमने महाराज के पास कांचनमाला को देखा है ? (कान लगाकर तथा सुनकर) क्या कहती हो—"यहाँ आकर गये हुए उसे कुछ देर हुई।" अब कहाँ उसे देखूँगी ? (सामने देखकर) यह कांचनमाला इधर ही आ रही है। उसके पास चलूँ।

[कांचनमाला का प्रवेश]

कांचन—(जोर से हंसकर) साधु ! वसंतक। साधु। इस संधि-विग्रह की चिन्ता कर तुम अमात्य यौगंधरायण से भी बढ़ गये।

मद—(मुसकुराकर पास जाकर) कांचनमाले। आर्यवसंतक ने क्या किया जिसके कारण वह इतना प्रशंसित हो रहा है।

कांचन—मदनिके ! तुम्हें यह पूछने से क्या प्रयोजन ? तुम इस रहस्य को नहीं (छिपाकर) रख सकती।

मद—महारानी की शपथ करती हूँ यदि (यह रहस्य) किसी से प्रगट करूँ।

कांच—यदि ऐसा (कहती हो) तो सुनो ! आज राजगृह से लौटते हुए चित्रशाला के द्वार पर मैंने वसंतक की सुसंगता से (होती हुई) बातें सुनी।

मद—(उत्सकता से) सखि ! कैसी ?

कांचन—जैसे-"सुसंगते ! सागरिका को छोड़कर प्रिय मित्र की अस्वस्थता को और कोई कारण नहीं है। उसी का उपाय सोंचो।"

मद—तब सुसंगता ने क्या कहा ?

काँचन—उसने यह कहा—"चित्रफलक के वृत्तांत से सशंकित होकर सागरिका को मेरे हाथ सौंपते हुए महारानी ने आज जो नेपथ्य (वेष) मुझे प्रसन्न होकर दिया है उसी से महारानी का वेषधारण की हुई सागरिका को लेकर तथा मैं भी कांचन माला का वेष धारण कर (आज) सायंकाल के समय महाराज के (पास) जाऊँगी। तुम भी यहीं

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतीक्षा करोगे। उस माधवी लता में उस (सागरिका) के साथ महाराज का मिलन होगा।"

मदनिका—"खेद है सुसंगते। तुम नष्ट हो। जो तुम परिचारिकाओं पर वात्सल्य दिखाने वाली महारानी को ठग रही हो।"

कांचन—मदनिके ! इस समय तुम कहाँ जा रही हो ?

मद्—शरीर से अस्वस्थ महाराज का कुशल वृत्तांत जानने के लिये भेजी हुई तुम देर कर रही थीं अतः घबराकर महारानी द्वारा मैं तुम्हारे (ही) पास भेजी गयी थी।

कांचन—महारानी अत्यन्त सरल है जो ऐसा समझती हैं। (परिक्रमा कर तथा देखकर) यहाँ महाराज अस्वस्थता के व्याज से अपनी मदनावस्था छिपाते हुए (गज) दन्त के बन्दनवार से सुशोभित बारजे में बैठे हुए हैं। आओ। इस वृत्तांत को महारानी से निवेदन करें।

[दोनों का प्रस्थान]

[प्रवेशक]

(बैठकर मदनावस्था का अभिनय करते हुए राजा का प्रवेश।)

राजा—(उत्कंठा पूर्वक लम्बी सांस लेकर)

हृदय ! (तुम) इस समय कामाग्नि के द्वारा उत्पन्न यह सन्ताप सहन करो। इस सन्ताप के नाश का उपाय ही नहीं है। उस (सागरिका) के लिये व्यर्थ क्यों क्रोध कर रहे हो ? क्योंकि मुझ जैसे मूर्ख ने किसी प्रकार प्राप्त हुआ आर्द्र चन्दन रस की तरह स्पर्श (सुख) देने वाला उसका हाथ पकड़कर चिरकाल तक तुम्हारे ऊपर नहीं रखा ॥१॥

अहो ! महान आश्चर्य है।

मेरा मन चंचल है तथा स्वभावतः अदृश्य भी है। फिर भी कामदेव ने (अपने) समस्त वाणों द्वारा इस मन को एक साथ न जाने कैसे विद्ध किया ॥२॥

(ऊपर की ओर देखकर) कुसुमायुध !

कामदेव के वाण पाँच नियत है और हमारे ही समान असंख्य मनुष्य उसके लक्ष्य होते हैं। यह जो संसार में प्रसिद्ध है वह तुम्हारे (आचरण) में विपरीत देखा गया। क्योंकि तुमने (अपने) असंख्य (वाणों) से इस (अकेले) असहाय कामुक को विद्धकर पंचत्व को (मरण दशा को) पहुँचा दिया ॥३॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(सोचकर) मैं उस (वासवदत्ता) के द्वारा इस प्रकार की अवस्था को प्राप्त हुए अपनी (उतनी) चिन्ता नहीं करता हूँ जितनी क्रोध छिपाती हुई देवि (वासवदत्ता) के नेत्रों के सन्मुख उपस्थित उस तपस्विनी सागरिका की (चिन्ता करता हूँ।) क्योंकि—

"मैं पहिचान ली गई" इस लज्जा से सब के सन्मुख मुँह नीचा करती है। दो (सखियों) का सम्भाषण देखकर (उनके द्वारा होती हुई) अपने सम्बन्ध की बातचीत का अनुमान करती है। सखिया के मुसकुराने पर अत्यन्त दीनता प्रगट करती है इस प्रकार (मेरी) प्रिया प्रायः हृदय में भयभीत होकर दुखी रहती है ॥४॥

उसका वृत्तांत जानने के लिये मैंने वसन्तक को भेजा है। (वह) क्यों देर कर रहा है ?

[प्रसन्न वसन्तक का प्रवेश।]

वसन्तक—(सन्तोष से) अहा हा ! आश्चर्य है। मेरा अनुमान है, कौशाम्बी का राज्य प्राप्त होने पर भी प्रिय मित्र को उतना सन्तोष न होगा जितना आज मुझसे (यह) प्रिय समाचार सुनकर होगा। जाकर प्रिय मित्र से निवेदन करूँगा। (परिक्रमा कर तथा देखकर) यह मेरा प्रिय मित्र इसी दिशा की ओर देख रहा है अतः मैं समझता हूँ कि (वह) मेरी ही प्रतीक्षा कर रहा है। उसके पास चलूँ। (निकट जाकर) प्रिय मित्र की विजय हो। मित्र! इच्छित कार्य सिद्ध होने के कारण तुम्हें बधाई है।

राजा—(हर्ष से) मित्र ! प्रिया सागरिका कुशल है ?

वसन्तक—(हर्ष से) मित्र ! शीघ्र ही स्वयं देखकर जान लोगे।

राजा—(सन्तुष्ट होकर) क्या प्रियतमा का दर्शन भी होगा ?

वसंतक—(अहंकार से) क्यों न होगा ? बृहस्पति के बुद्धिवैभव का उपहास करने वाला यह तुम्हारा अमात्य जो है।

राजा—(हँसकर) इसमें क्या आश्चर्य ? तुम क्या नहीं कर सकते ? कहो। मैं विस्तार से सुनना चाहता हूँ।

वसंतक—(कान में 'इस प्रकार' 'इस प्रकार' कहता है)

राजा—(संतुष्ट होकर) मित्र तुम्हारा यह पुरस्कार है।

[हाथ से कंकण निकाल कर देता है।]

वसंतक—(कंकण पहिनकर तथा ध्यानपूर्वक अपने को देखकर)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अब ऐसा हो। शुद्ध सुवर्ण के कंकण से सुशोभित यह हाथ जाकर ब्राह्मणी को दिखाऊँगा।

राजा—(हाथ पकड़कर रोकते हुए) मित्र ! पीछे दिखाओगे। देखो, अभी दिन कितना बाकी है !

वसंतक—(परिक्रमा कर तथा देखकर हर्ष से) देखो। देखो। ये भगवान सूर्य जो अत्यंत अनुराग से उत्क्षुब्ध हुए हैं तथा जिन्होंने संध्या वधू को संकेत (मिलने का समय) दिया है; अस्ताचल शिखर के वन का अनुसरण कर रहे हैं।

राजा—(देखकर हर्ष से) मित्र तुमने ठीक पहिचाना। दिन बीत चुका। क्योंकि—

'त्रिभुवन भ्रमण के कारण (अत्यंत) दीर्घमार्ग का उलंघन करने के अनंतर मेरा एक चक्र (पहिया) का रथ पुनः प्रातःकाल (उदयाचल को) पहुँचने में समर्थ नहीं है,' इस प्रकार मन में अत्यंत चिन्तित हुए तथा संध्या के समय आकृष्ट होने से बची हुई अपने किरणों से सुवर्ण मय (रथ चक्र) आरों को स्पष्ट लक्षित कराते हुए अस्ताचल पर विराजमान ये सूर्य क्षितिज (दिक्चक्र) को (स्वर्णमय आरों के व्याज से) मानों (अपने निकट) ले जा रहे हैं ॥५॥

और भी,

पद्मवदने ! मैं जा रहा हूँ। (मेरा) जाने का यही समय है। निद्रित होने पर तुम्हें मुझी को जगाना है। अस्ताचल पर अपनी किरणें समेटकर सूर्य कमलिनी की इस प्रकार मानों सांत्वना कर रहे हैं ॥६॥

उठो ! उसी माधवीलता के मंडप में जाकर प्रियतमा के संकेत समय की प्रतीक्षा करें।

वसं—ठीक कहाँ ! (उठता है देखकर) मित्र देखो। यह वनराजियों की विरलता नष्ट करता हुआ सघन कर्दम (कीचड़) वनशूकर तथा भैंसे का कृष्णवर्ण धारणकर प्राची दिशा को आच्छादित करता हुआ अँधकार (सर्वत्र) फैल रहा है।

राजा—(हर्ष से चारों ओर देखकर) मित्र ! तुमने ठीक देखा क्योंकि—

यह नीलकंठ की (कंठकी) कांति चुराने वाला अधंकार प्रथम

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूर्व दिशा को आच्छादित करता है। उसके अनंतर अन्य दिशाओं को भी यथाक्रम आच्छादित कर वह पर्वतवृक्ष तथा नगरों के विभाग उप-विभागों को छिपा रहा है। उसके अनंतर यह बहुत घना होकर लोगों की नेत्रकांति छीन रहा है ॥७॥

मार्ग बताओ।

वसन्तक—प्रिय मित्र इधर से आय।

[परिक्रमा करते हैं।]

वसंतक—(गौर से देखकर) मित्र ! यह वृक्षों की अधिकता के कारण अंधकार को पिण्डीकृत (एकत्र) करता हुआ मकरोंद्यान आ गया है। यहाँ मार्ग कैसे दिखाई देगा !

राजा—(सूंघकर) मित्र ! आगे चलो। यहाँ मार्ग समझा बूझा ही है। क्योंकि—

द्विगुणतर अंधकार के द्वारा छिपा हुआ भी यह मार्ग विभिन्न सुगंधों से युक्त वृक्षों के चिन्हों से यहाँ सूंघकर स्पष्ट हो रहा है। यह अवश्य ही चम्पक वृक्ष की कतार है। यह सुन्दर सिन्दुवार (वृक्ष) है। यह है बकुल वृक्षों की घनी पंक्ति और यह है पाटली वृक्ष की श्रेणी ॥८॥

[परिक्रमा करते हैं।]

वसन्तक—गिरते हुए मत्त मधुकरों के द्वारा, बकुल कुसमों की सुगंध से जिसकी दश दिशाएं सुगंधित हो उठी हैं, जिसमें कोमल मर-कत मणियों की फर्श, जिस पर चलने से चरणों को सुख प्रतीत होता है, उसी माधवलता के मंडप में हम लोग पहुँच गये हैं, तुम यहाँ रुको। मैं महारानी का वेष धारण किये हुए सागरिका को लेकर शीघ्र आ रहा हूँ ॥९॥

राजा—मित्र ! शीघ्रता करो।

वसंतक—मित्र ! घबराओ मत। मैं अभी आता हूँ।

[प्रस्थान]

राजा—मैं भी इस मरकतमणि के चबूतरे पर बैठकर प्रियतमा के संकेत समय की प्रतीक्षा करूँ। (बैठकर सोचते हुए) अपनी स्त्री के समागम को तिरस्कृत करने वाले कामियों की नवीन स्त्री की अभिलाषा विचित्र होती है क्योंकि—(वह)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रेमार्द्र नेत्र (नायक के) मुख की ओर नहीं लगाती। कंठालिंगन करने पर भी अत्यंत प्रेम से पयोधर नहीं मिलाती। (अत्यंत) प्रयत्न से पकड़ने पर भी बारंबार "मैं जाऊँगा" ऐसा कहता है। इतना होने पर भी संकेत स्थल की कामिनी अधिक आनंद देती है।

अरे! वसंतक देर क्यों कर रहा है। क्या वृत्तांत वासवदत्ता को ज्ञात हो गया?

(वासवदत्ता तथा कांचनमाला का प्रवेश।)

वास—कांचनमाले! क्या सचमुच मेरा वेष धारण कर सागरिका आर्यपुत्र से अभिसार करेगी?

कांचन—महारानी से असत्य कैसे कहा जा सकता है? अथवा चित्रशाला के द्वार पर बैठा हुआ वसंतक ही इसका प्रमाण होगा।

वास—आओ! वहाँ चलें।

कांचन—महारानी! इधर से आयें।

[परिक्रमा करती हैं]

[अवगुंठन लेकर बैठे हुए वसंतक का प्रवेश]

वसंतक—(कान लगाकर) चित्रशाला के द्वार पर पद शब्द सुनाई देने से मैं अनुमान करता हूँ सागरिका आ गई।

कांचन—महारानी! यह चित्रशाला है। वसंतक को सूचना करूँ। (चुटकी बजाती है।)

वसंतक—(सहर्ष से आगे बढ़कर मुसकुराता हुआ) तुमने कांचनमाला का वेष (उसके) समान किया है। सागरिका कहाँ है?

कांचन—(उँगली दिखाती हुई) यह है।

वसंतक—(देखकर आश्चर्य से) यह स्पष्ट ही वासवदत्ता है।

वासव—(सशंकित होकर स्वगत) इसके द्वारा मैं पहिचान ली गई। जाऊँगी (जाने की चेष्टा करती है।)

वसंतक—सागरिके! इधर आओ।

[वासवदत्ता व्यंग्य से हँसती हुई कांचनमाला की ओर देखती है]

कांचनमाला—(विदूषक से छिपाकर भर्त्सना करती हुई) हताश! यह वचन स्मरण रखना।

वसंतक—सागरिके! शीघ्रता करो। देखो ये पूर्व दिशा से भगवान मृगलांच्छन-चन्द्रमा उदित हो रहा है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वासवदत्ता—(घबराकर जनांतिक) भगवान मृगलांच्छन ! तुम्हें नमस्कार है। मुहूर्तमात्र (अपने) शरीर को छिपा लो जिससे इस (राजा) की (अन्य) चेष्टा देखूँगी।

[सब परिक्रमा करते हैं]

राजा—(उत्कंठापूर्वक स्वगत्) प्रियतमा का मिलन अत्यन्त समीप होने पर भी मेरा मन क्यों अत्यन्त दुखी हो रहा है। अथवा—

काम का तीव्रताप प्रथम उतनी बाधा नहीं करता जितनी (इष्ट वस्तु की प्राप्ति) समीप (होने पर करता है) वर्षा ऋतु में जलवृष्टि समीप होने पर दिन भी अधिक तपता है ॥१०॥

वसंतक—(सुनकर) सागरिके ! यह प्रिय मित्र तुम्हारे ही उद्देश्य से अत्यन्त उत्कंठित होकर (कुछ) कह रहा है। जरा रुको। तुम्हारा आगमन उसे सूचित करूँ।

[वासवदत्ता सिर हिलाती है]

वसन्तक—(राजा के निकट लाकर) मित्र ! बधाई है। मैं यह सागरिका ले आया हूँ।

राजा—(हर्ष से सहसा उठकर) कहाँ है वह ? कहाँ है वह ?

वसन्तक—(भृकुटियों के द्वारा) यह है।

राजा—(पास जाकर) प्रिये सागरिके !

(तुम्हारा) मुख चन्द्र है। तुम्हारे नेत्र कमल है। पद्म के समान दोनों हाथ है। कदली के गर्भ-स्तम्भ की तरह दोनों जंघाएँ हैं। पद्म-नाल के समान दोनों भुजाएँ हैं। अतः आह्लाद को देने वाले समस्त अवयवों वाली ! निशंक तथा वेग से मेरा आलिंगन कर अनङ्ग के संताप से दुखी मेरे अवयवों को सुखी करो। आओ। आओ ॥११॥

वासवदत्ता—(जनांतिक) कांचनमाले ! आर्यपुत्र स्वयं यह कह रहे हैं। पुनः (मुझे पहिचानने के अनन्तर) क्या कहेंगे। यह आश्चर्य का (विषय) है।

कांचन—(जनांतिक) ऐसा ही है। किन्तु साहसी पुरुष के लिये क्या सम्भव नहीं है।

वसन्तक—सागरिके ! प्रिय मित्र से निशंक बातें करो। अब तक नित्य रुष्ट होने वाली वासवदत्ता के दुष्ट वचनों के कारण दुखित हुए महाराज के कान तुम्हारे मृदु तथा मधुर वचन-विन्यास से सुखी हों।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वासव—(जनांतिक रोष भरी मुसकुराहट से) कांचनमाले ! मैं इस प्रकार कटु बोलने वाली हूँ तथा आर्य वसन्तक प्रिय बोलने वाला है।

कांचनमाला—(जनांतिक भर्त्सना करती हुई) हताश ! यह वचन स्मरण रखना।

वसन्तक—मित्र ! देखो। देखो। यह कुपित हुई कामनियों के कपोल की तरह लाल हुए भगवान मृगलांच्छन पूर्व दिशा को प्रकाशित करते हुए उदित हो रहे हैं।

राजा—(गौर से देखकर सस्पृह) प्रिये ! देखो, देखो।

यह निशापति तुम्हारे मुख के द्वारा सब कांति छीनी जाने के कारण मानो (तुम्हारा) प्रतीकार करने के लिये पर्वत शिखर पर आरूढ़ होकर तथा हाथ ऊँचे कर (तपस्या करता हुआ) बैठा है। प्रिये इसने उदित होकर क्या (अपनी) जड़ता प्रगट न कर दी ॥१२॥

क्योंकि—

क्या तुम्हारा (वदन-चन्द्र) चन्द्र की तरह पद्म की कांति नष्ट नहीं करता ? क्या (चन्द्र के समान लोगों के नेत्रों को आनंदित नहीं करता ? केवल दर्शन मात्र से (चन्द्र द्वारा मकर-केतन समुद्र की तरह) मकरध्वज) काम की वृद्धि नहीं करता ? यदि चन्द्र को अमृत का गर्व है तो तुम्हारे पास भी दो (अमृतमय) अधरबिंब हैं। इस प्रकार के (तुम्हारे) मुखचन्द्र होने पर भी जो यह दूसरा शीतांशु (चन्द्र) उदित हो रहा है ॥१३॥

वासवदत्ता—(क्रोध से अवगुंठन हटाकर) आर्यपुत्र ! सचमुच ही मैं सागरिका हूँ किन्तु तुम सागरिका के कारण उत्क्षुब्ध होकर सब सागरिका मय देख रहे हो।

राजा—(दीनतापूर्वक जनांतिक) अरे रे ! कष्ट है। क्या देवी वासवदत्ता हैं ? मित्र ! यह क्या है।

वसंतक—(विषादपूर्ण) मित्र ! और क्या ? हमारे जीवित होने में ही संदेह हो गया है।

राजा—(बैठकर तथा दोनों हाथ जोड़कर) प्रिये वासवदत्ते ! दया करो।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वासव—(उसके सम्मुख आँसू गिराती हुई) आर्यपुत्र ऐसा मत कहो ये बातें बीत चुकीं।

वसन्तक—(स्वगत्) अब क्या करूँ। अस्तु। ऐसा करूँगा (प्रकट) आप महानुभावा हैं। अतः प्रिय मित्र का (यह) एक अपराध क्षमा कर दें।

वासवदत्ता—आर्य वसन्तक ! प्रथम समागम में बाधा करती हुई मेरे द्वारा ही इन (महाराज) का अपराध हुआ है।

राजा—अपराध इस प्रकार, स्पष्ट देखा जाने पर मैं क्या कहूँ ? तथापि प्रार्थना करता हूँ।

देवि ! यह मैं नीच (अपने) मस्तक से तुम्हारे चरणों की महावर की ईषद ललिमा दूर कर दूँगा। किन्तु यदि मुझपर (तुम्हारी) अत्यंत करुणा (दया) हो (तो भी) मैं कोप से उत्पन्न मुखचंद्र की (ललिमाको) दूर करने में समर्थ हो सकूंगा ॥१४॥

[पैरों पर गिरता है।]

वासव—(हाथ से रोकती हुई) आर्यपुत्र ! उठो। उठो। यह (मैं) जन अत्यंत निर्ल्लज्ज है जो आर्य पुत्र का ऐसा (ठगने वाला) अन्तःकरण जानकर भी पुनः क्रोध करता है। आर्य पुत्र सुख से रहे। मैं जाऊँगी।

[जाना चाहती है।]

कांचन—महारानी ! इन पर दया करें। चरणपतित महाराज को छोड़कर जाती हुई महारानी को पश्चाताप करना होगा।

वासव—दूर हो मूर्ख ! यहाँ दया अथवा पश्चाताप का क्या कारण है। आओ चलें।

[दोनों का प्रस्थान।]

राजा—देवि ! दया करो। दया करो। ("यह मैं नीच आदि" फिर कहता है।)

वसंतक—उठो ! देवी वासवदत्ता गईं। तब क्यों यह अरण्य-रोदन कर रहे हो ?

राजा—(मुंह ऊपर उठाकर) क्या बिना दया किये ही देवी चली गईं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वसंतक—दया क्यों नहीं की ? हम लोग अब भी शरीर से सुरक्षित हैं।

राजा—धिक् मूर्ख ! क्यों इस प्रकार मेरा उपहास कर रहे हो ? तुम्हारे ही कारण हमारे लिए यह अनर्थ परंपरा आई। क्योंकि—

प्रणय के निरंतर सम्मान से दिनों दिन प्रीति बढ़ रही थी। इसके पहले न किये हुए अपराध को मेरे द्वारा होते देख कर असहनशील यह मेरी प्रिया अवश्य आज आत्मघात करेगी। अत्यंत प्रेम का खंडित होना असह्य होता है ॥१५॥

वसंतक—महारानी क्रुद्ध होकर न जाने क्या करेगी ! मेरा अनुमान है कि सागरिका का जीवन अब कठिन है।

राजा—मित्र ! मैं भी यही सोचता हूँ। हा प्रिये सागरिके—

[वासवदत्ता का वेष धारण किये हुए सागरिका का प्रवेश]

सागरिका—(उद्वेग से) सौभाग्यवश बनाये हुए इस महारानी के वेष से इस संगीतशाला से निकलतीं हुई मैं किसी से लक्षित न हुई। इस समय यहाँ क्या करूँ। (आँखों में आँसू भरकर सोचती है)

वसंतक—क्यों मूढ़ की तरह बैठे हो इसके प्रतीकार की चिन्ता करो।

राजा—मित्र ! वही सोच रहा हूँ। देवी की दया को छोड़कर मैं दूसरा उपाय नहीं देखता हूँ। आओ वहीं चलें।

[परिक्रमा करते हैं।]

सागरिका—(आँखों में आँसू भरकर सोचती हुई) ठीक ! इस समय स्वयं अपने को बाँधकर मर जाऊँगी जिससे संकेत वृतात को जानने के कारण सुसंगता की तरह मैं भी अपमानित न होऊँ। इसी अशोक वृक्ष के पास जाकर मन चाहो करूँगी।

[परिक्रमा करती है।]

वसंतक—(सुनकर) रुको। रुको। पद शब्द सुनाई दे रहा है। समझता हूँ कि कदाचित पश्चाताप करती हुई महारानी पुनः आ रही हों।

राजा—मित्र ! देवी महानुभावा हैं। कदाचित ऐसा भी हो सकता है। शीघ्र देखो।

वसंतक—जो आपकी आज्ञा।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[प्रस्थान]

सागा—(आगे बढ़कर) इसी माधवीलता का फाँस बनाकर तथा अशोक वृक्ष से अपने को बाँध कर आत्मघात करूँगी। (लताका फाँस बनाती हुई) हातात। हा तात। हा अम्ब। अम्ब। यह मैं अभागिनी इस समय अनाथ तथा आश्रय रहित होकर मर रही हूँ।

[गले में फाँस लगाती है।]

बसंतक—(देखकर) यह कौन है? क्या महारानी वासवदत्ता है? (घबराकर जोर से) मित्र! बचाओ। बचाओ यह महारानी वासवदत्ता अपने को बाँधकर आत्मघात कर रही हैं।

राजा—(गले से फाँस निकालकर) अरी! साहस करने वाली। यह क्या अनुचित कर रही हो?

तुम्हारे कंठ में फाँस होने के कारण मेरे प्राण कंठ तक आ गये। अतः (मेरा) यह स्वार्थ प्रयत्न है। हे प्रिये। साहस छोड़ दो ॥१६॥

सागरिका—(राजा को देखकर) अरे क्या यह महाराज हैं? (सहर्षस्वगत्) सचमुच इन्हें देखकर मुझे पुनः जीवन की अभिलाषा उत्पन्न हुई है। अथवा इन्हें देखकर अब मैं कृतार्थ होकर अपने को बाँधकर सुख से प्राण छोड़ सकूंगी (प्रकट) महाराजा मुझे छोड़ दें। यह मनुष्य पराधीन है। आप भी अपने को महारानी का अपराधी न बनायें। (पुनः गले में फाँस लगाना चाहती है।)

राजा—(ध्यान पूर्वक देखकर हर्ष से) क्या मेरी प्रिया सागरिका है?

[गले से फाँस निकाल कर]

तुम्हारे इस साहस से क्या लाभ! इस लता के पाश को शीघ्र मुझे पहिना दो। (मेरे) प्राण की स्वामिनी। जाते हुए मेरे जीवन (प्राण) को रोकने के लिये (क्षणान्त) स्थल में मेरे गले में बाहुपाश पहना दो ॥१७॥

(बाहुपाश पकड़कर गले लगा कर स्पर्श सुख का अभिनय करता हुआ विदूषक प्रति)

मित्र! यह वृष्टि मेघ रहित है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वसंतक—ऐसा ही है ! यदि असमय की वातावलो (तेजहवा) बनकर देवी वासवदत्ता न आये ?

[वासवदत्ता तथा कांचनमाला का प्रवेश]

वासव—कांचनमाले ! चरण पतित आर्य पुरुष का तिरस्कार कर आती हुई मैंने अत्यंत निष्ठुर आचरण किया। अब स्वयं जाकर आर्य पुत्र की विनय करूँगी।

कांचन—महारानी को छोड़कर और कौन इस प्रकार कहना जानता है ? वही देव (महाराज) दुर्जन है, महारानी नहीं है।"

(महारानी इधर से आयें।)

[परिक्रमा करती है।]

राजा—अरी मुग्धे ! क्यों अब उदासीन होकर हम लोगों के मनोरथ को निष्फल बना रही हो ?

कांचन—(कान लगाकर) महारानी ! पास ही महाराज बोल रहे हैं। मेरा अनुमान है कि तुम्हारी ही विनय करने के लिये आ रहे हैं। महारानी आगे हों।

वासव—(हर्ष से) तो मैं छिपी हुई पीछे से जा कर तथा आलिंगन कर प्रसन्न करूँगी।

वसन्तक—सागरिके ! निःशंक प्रिय मित्र से बातें करो।

वासव—(सुनकर दुःख से) कांचनमाले ! सागरिका भी यहाँ उपस्थित है। सुनें। सब जानने के पश्चात् आगे बढ़ेंगे (वैसा करती है)

सागरिका—महाराज ! इस झूठे दाक्षिण्य से क्या (लाभ) ? प्राण से भी अधिक प्रिय महारानी का (आप) अपने को अपराधी क्यों बना रहे हैं ?

राजा—तुम झूठ बोलने वाली हो। क्योंकि—

(क्रोध के कारण) श्वास-प्रश्वास के द्वारा (वासवदत्ता के) कुचयुगल कंपित होने पर (मैं भी) कंपित हुआ। (कोप से) मौन धारण करने पर मैंने प्रिय भाषण किया। उसकी भृकुटियाँ कुटिल होने पर मैं दोनों चरणों पर गिर पड़ा। इस प्रकार कुलीनता के कारण स्वभावतः हुई वह देवी की सेवा थो। किन्तु प्रेम के संबध से वुद्धिगत हुई जो प्रीति है वह तो तुम्हीं पर है ॥१८॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वासवदत्ता—(आगे बढ़कर क्रोध से) आर्यपुत्र ! उचित है। उचित है यह।

राजा—(देखकर दीनता से) देवि ! अकारण मेरा तिरस्कार करना तुम्हें उचित नहीं है, तुम्हारे वेष सादृश्य से वंचित होकर तुम्हें ही समझकर हम लोग यहाँ आ गये। क्षमा करो।

[पैरों पर गिरता है]

वासवदत्ता—(क्रोध से) आर्यपुत्र ! उठो। उठो। क्यों अब भी कुलीनता के कारण स्वभावतः उत्पन्न हुई सेवा के दुख का अनुभव करते हो ?

राजा—(स्वगत) क्या देवी ने यह भी सुन लिया। अब देवी को प्रसन्न करने के यत्न में (अब) सर्वथा निराशा ही हाथ है।

[अधोमुख होकर बैठता है]

वसन्तक—आप अपने को बाँधकर आत्मघात कर रही हैं अतः वेश-सादृश्य से मोहित होकर मैं प्रिय मित्र को यहाँ ले आया। यदि मेरे वचनों पर विश्वास नहीं है तो इस लतापा ा को देखो।

[लतापाश दिखाता है]

वासव—(क्रोध से) कांचनमाले ! इसी लतापाश से बाँधकर इस ब्राह्मण को पकड़ लो (और) इस दुष्ट कन्या को आगे करो।

कांचन—जो महारानी की आज्ञा ! (लतापाश वसन्तक के गले में बाँधकर मारती है।) हताश ! अपनी अविनय शीलता का फल भोगो। 'महारानी के दुष्ट वचनों से कान दुखित हुए' यह अपने वचन स्मरण करो। सागरिके तुम भी आगे हो।

सागरिका—(स्वगत) मैंने इतना भी पुण्य नहीं किया कि अपनी इच्छा से मरण भी न पा सकी।

वसन्तक—(दुख से) मित्र ! मुझ अनाथ को देवी के बन्धन से मुक्त करने का स्मरण रखो। राजा की ओर देखती हुई सागरिका को तथा वसन्तक को पकड़ी हुई कांचनमाला के साथ वासवदत्ता का प्रस्थान।

राजा—(खेद से)

मैं दीर्घ क्रोध के कारण स्निग्धता तथा मुसकुराहट नष्ट हुए हुए देवी (वासवदत्ता) के उस मुख की चिंता करूँ अथवा अत्यन्त क्रोध

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निमीलित होती हुई (अतःएव) त्रस्त हुई सागरिका की सोचूँ या यहाँ से बाँधकर ले जाये जाते हुए वसन्तक का विचार करूँ चारों ओर से दुखित होकर मैं क्षण भर भी शांति नहीं पा रहा हूँ ॥१६॥

अब मेरे यहाँ रहने से भी क्या लाभ ? देवी को प्रसन्न करने के लिये अन्तःपुर चलूँ ।

[सब का प्रस्थान]

[संकेतक नामक तृतीय अंक]

—०:०—

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चतुर्थ अंक

(हाथ में) रत्नमाला ली हुई तथा आँखों में आँसू भरी सुसंगता का प्रवेश।

सुसंगता—(अत्यंत करुणा से लम्बी साँस लेकर) हा प्रिय सखी। सागरिके ! हा लज्जावती। सखियों पर वात्सल्य दिखाने वाली। उदारशीले। सौम्य दर्शने। कहाँ गई हो ? मुझसे बोलो। (रोती है, ऊपर देखकर तथा लम्बी साँस लेकर) अरे हत्यारे दैव। अकरुण। उस प्रकार असामान्य रूप तथा शोभावाली, (उसका) तुमने यदि निर्माण किया था तो क्यों उसे इस प्रकार दूसरी अवस्था में पहुँचा दिया। जीवन से निराश होती हुई उसने 'यह रत्नमाला किसी ब्राह्मण को दान कर देना' यह कहकर मेरे हाथ सौंप दी। किसी ब्राह्मण को देखूँ। (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे क्या ? यह ब्राह्मण वसंतक इधर ही आ रहा है। इसी को दान करूँगी।

[आनंदित वसंतक का प्रवेश।]

वसंतक—अहा हा ! आज प्रिय मित्र के द्वारा प्रसन्न की गई वासवदत्ता ने मुझे बन्धन से मुक्त कर अपने हाथों से दिये हुये लड्डू और मोदकों से मेरा पेट भर दिया। और दो रेशमी वस्त्र तथा कर्ण-फूल भी दिये। अब प्रियमित्र को देखूँगा।

[परिक्रमा करती है।]

सुसंगता—(रोती हुई सहसा आगे बढ़कर) आर्य वसंतक ! क्षणभर रुको।

वसंतक—(देखकर) क्या सुसंगता है ? सुसंगते ! क्यों रही हो ? क्या सागरिका का कोई बुरा समाचार है ?

सुसंगता—"यही तो निवेदन करना चाहती हूँ।" वह तपस्विनी को महारानी के द्वारा उज्जैन भेज दी गई। यह प्रवाद प्रचलित कराकर आधी रात के समय न जाने कहाँ पहुँचा दी गई ?

वसंतक—(उद्वेग से) हा सागरिके ! हा असामान्य रुपवती तथा कान्तिमती। हा मृदु भाषिणी। महारानी ने (यह) अत्यंत घृणित (कार्य) किया। उसके अनंतर—

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुसंगता—जीवन से निराश होती हुई उसने "यह रत्नमाला 'आर्य वसंतक के हाथ सौंप देना' यह कहकर मेरे हाथ दे दी। इसे आप स्वीकार करें।"

वसंतक—(आँखों में आँसू भर कर तथा करुणा से कानों में उँगली लगाकर) इस अवसर पर इसे लेने के लिये मेरा हाथ आगे नहीं बढ़ रहा है।

[दोनों रोते हैं।]

सुसंगता—(हाथ जोड़ कर) उसी पर अनुग्रह करने के लिए इसको आप स्वीकार करें।

वसंतक—(सोचकर) अथवा, लाओ। इसी से सागरिका के विरह से दुखित प्रिय मित्र को बहलाऊँगा।

[सुसंगता वसंतक को रत्नमाला देती है।]

वसंतक—(लेकर गौर से देखता हुआ आश्चर्य से) इस प्रकार के अलंकार की प्रप्ति (उसे) कहाँ से हुई ?

सुसंगता—आर्य ! मेरे द्वारा भी वह यही पूँछी गयी थी।

वसंतक—तब उसने क्या कहा ?

सुसंगता—उसने ऊपर की ओर देखकर एक लंबी साँस ली। और 'सुसंगते ! तुम्हें इस कहानी से क्या लाभ' यह कहकर वह रोने लगी।

वसंतक—सामान्य लोगों को दुर्लभ इस अलंकार से क्या उसने नहीं कहा ? अवश्य ही उसको कुलीन गृह में उत्पन्न होना चाहिये। सुसंगते ! प्रिय मित्र इस समय कहाँ है ?

सुसंगता—आर्य ! ये महाराज, महारानी के मंदिर से निकल कर स्फटिक शिला के मंडप में गये हैं। आर्य जायं। मैं भी महारानी वासवदत्ता की पार्श्ववतिनी होऊँगी।

[दोनों का प्रस्थान।]

[प्रवेशक]

आसन पर बैठे हुए राजा का प्रवेश।

राजा—(सोचकर)

व्याजपूर्ण शपथों के द्वारा, प्रियभाषण के द्वारा, (उसके) मन की तरह किये हुये आचरण के द्वारा, अत्यंत दीनता से चरणों पर

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गिरने से तथा सखियों के (समझाने के) वाक्यों से देवी (वासवदत्ता) उतनी प्रसन्न न हुई जितनी रोती हुई उसी (वासवदत्ता) के द्वारा (अपने) अश्रुजल से धोकर मानो अपना कोप स्वयं दूर कर (प्रसन्न हुई) ॥१॥

(उत्कंठा से लंबी साँस लेकर) अब देवी वासवदत्ता को प्रसन्न कर लेने पर केवल सागरिका की चिंता ही मुझे दुख दे रही है। क्योंकि—

कमलगर्भ की तरह सुकुमार शरीर वाली यह (मेरी) प्रियतमा उस समय अत्यंत अनुराग पूर्ण प्रथमालिंगन से द्रवीभूत होकर, इस समय मैं समझता हूँ कि कामदेव के बाणों से हुए रन्ध्रों के मार्ग से (मेरे) हृदय में प्रवेश कर गई है ॥२॥

(सोचकर) और जो मेरा विश्रान्ति स्थान वसंतक था वह भी (वासवदत्ता द्वारा) बाँध लिया गया है। (अब) मैं किसके सामने आँसू गिराऊँगा। लंबी साँस लेता है,

[वसंतक का प्रवेश।]

वसंतक—(परिक्रमा कर तथा देख कर आश्चर्य से) उत्कंठा के कारण अत्यंत दुर्बल होने पर भी प्रशंसनीय शरीर को धारण किया हुआ यह (मेरा) प्रिय मित्र उदित हुए द्वितीया चन्द्र की तरह अधिक शोभित हो रहा है। इसके निकट जाऊँ। (आगे बढ़कर) तुम्हारा कल्याण हो। महारानी के हाथ पड़कर भी पुनः तुम मुझे इन आँखों से देख रहे हो, इसकी तुम्हें बधाई है।

राजा—(देखकर हर्ष से) अरे! वसंतक आ गया। मित्र। मुझे आलिंगन करो।

[विदूषक आलिंगन करता है।]

राजा—(आलिंगन कर) वेष के द्वारा ही तुमने देवी को प्रसन्नता निवेदन कर दी अब कहो। सागरिका का क्या समाचार है ?

वसंतक—(दीन होकर अधोमुख होता है)

राजा—मित्र ! क्यों नहीं कह रहे हो ?

वसन्तक—अप्रिय है, अतः तुम्हें निवेदन करने में समर्थ नहीं हूँ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—(उद्वेग से तथा घबराकर) क्या अप्रिय ! स्पष्ट है उसने प्राण छोड़ दिये होंगे। हा प्रिये सागरिके।

[मूर्छित होने का अभिनय]

वसं०—प्रियमित्र ! सावधान। सावधान।

राजा—(होश में आकर तथा आँखों में आँसू भरकर)

प्राणों ! मुझ अदक्षिण को छोड़ दो। (कम से कम तुम तो) दक्षिण (अपनी सब स्त्रियों से समान प्रेम करने वाले) हो जाओ। मेरी बातें सुनों। यदि शीघ्र नहीं जाते हो तो ठग जाओगे। इस समय वह गज गामिनी दूर चली गई है ॥३॥

वसं०—कुछ और मत सोचों। सुना जाता है कि वह तपस्विनी देवी द्वारा उज्जैन भेज दी गई है। (यह) अप्रिय था, अतः मैंने नहीं कहा।

राजा—क्या उज्जैन भेज दी गई ? देवी (वासवदत्ता) का प्रेम मुझ पर नहीं है मित्र। तुम्हें यह किसने कहा ?

वसं०—सुसंगता ने ! और भी, उसने (सागरिका ने) किसी काम से यह रत्नमाला भेज दी है।

राजा—मुझे आश्वासित करना छोड़कर और (दूसरा क्या हो सकता है ?) प्रिय लाओ !

[विदूषक देता है।]

राजा—(रत्नमाला को लेकर, गौर से देखकर तथा हृदय पर रखते हुए) अहह !

उसके कंठ का आलिंगन पाकर गिरती हुई (सागरिका के) समान अवस्था वाली किसी सखी की तरह इस (रत्नमाला) के द्वारा यह मेरा शरीर आश्वासित किया जाता है ॥४॥

मित्र ! इसे तुम पहिनो। जिससे इसे ही देखकर हम लोग धैर्य धारण करेंगें।

वसंतक—जो आज्ञा ! (गले में पहिनता है।)

राजा—(आँखों में आँसू भरकर तथा लम्बी साँस लेकर) मित्र ! प्रिया का पुनः दर्शन दुर्लभ है।

वसं०—(भय से इधर देखकर) यहाँ जोर से ऐसा भाषण मत करो। कोई यहाँ (देवी के दूत) विचरण करते होगें।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[हाथ में बेत लिये हुए वसुंधरा का प्रवेश ।]

वसुंधरा—(निकट जाकर) महाराज की विजय हो। यह रुमण्वान् का भगिनी पुत्र विजय वर्मा कुछ प्रिय निवेदन करने की इच्छा से द्वार पर उपस्थित है ।

राजा—वसुन्धरे ! शीघ्र ले आओ ।

वसुन्धरा—जो महाराज की आज्ञा ! (जाकर तथा विजय वर्मा के साथ पुनः प्रवेश कर) विजयवर्मन् । यह महाराज हैं । आयं ! निकट जाँय ।

विजय वर्मा—(निकट जाकर) महाराज की विजय हो । महाराज ! रुमण्वान की विजय होने के कारण आपको बधाई है ?

राजा—साधु ! रुमण्वान् । साधु । थोड़े समय में बहुत बड़ा काम कर दिया । विजय वर्मा यहाँ बैठिये ।

[विजय वर्मा बैठता है]

राजा—(सन्तोष से) विजय वर्मा ! क्या कोसलेश्वर जीत लिये गये ।

विजय—महाराज के प्रभाव से ।

राजा—विजयवर्मा ! कहो । मैं विस्तार से वृतान्त सुनना चाहता हूँ ?

विजय—महाराज ! सुनिये । यहाँ महाराज की आज्ञा पाकर कतिपय दिनों में ही अनेक हाथी घोड़े तथा पैदल की महती अजिक्य सेना के साथ जाकर (सेनापति रुमण्वान) विन्ध्यदुर्ग में रहने वाले कोसलपति के दरवाजे रोककर (अपनी) सेना चारों ओर फैलाने लगे ।

राजा—उसके पश्चात् ।

विजय—उसके पश्चात् अत्यंत अभिमान के कारण इस तिरस्कार को न सहन कर कोसलेश्वर ने भी अपना संपूर्ण सैन्य जो प्रायः हाथियों का था, तैयार कर लिया ।

वसन्तक—शीघ्र कहो ! मेरा हृदय कंपित हो रहा है ।

राजा—उसके पश्चात्—

विजय—देव ! निश्चय किया हुआ यह कोसलेश्वर भी उसी क्षण विन्ध्य पर्वत से युद्ध के लिये निकलकर द्वितीय विन्ध्य पर्वत के

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समान गजघटा (हस्तिसमूह) से समस्त दिशाओं को छेकता हुआ (रुमण्वान) के सामने उपस्थित हो गया। एक क्षण के अनंतर इच्छित (कोसलेश्वर) की प्राप्ति होने के कारण द्विगुणित वेग से चलता हुआ तथा मद से उन्मत्त (अपने) हाथी से शत्रु के पदातियों का नाश करते हुए (सेनापति रुमण्वान) हाथी से कूदकर उसकी कौस ले प्रति स्पर्धा करने की इच्छा करने लगे ॥५॥

और भी—

शिरस्त्राणों के इधर उधर हो जाने के कारण (अतः) शस्त्रों के घर्षण सिर कट जाने पर, रक्त की नदी वहने पर, ध्वनियुक्त शस्त्र-प्रहार होने पर (अतः) कवचों से अग्नि निकलने पर, इस प्रकार (हमारी) प्रधान सेना के नष्ट हो जाने पर मत्त हाथी पर बैठे हुए कोसलेश्वर को समरांगण में ललकार कर—

राजा—क्या हमारी भी सेनायें नष्ट हो चुकी।

विजय—अकेले (सेना पति) रुमण्वान ने सैकड़ों बाणों से मार डाला ॥६॥

वसंतक—आप की विजय हो। हल लोगों ने जीत लिया। (नाचता है)

राजा—साधु ! कोशलपति। साधु तुम्हारी मृत्यु भी प्रशंसनीय है। जिसका पराक्रम शत्रु भी इस प्रकार वर्णन करते हैं। उसके पश्चात्—

विजय—उसके अनंतर (सेनापति) रुमण्वान भी मेरे बड़े भाई जय वर्मा को कोसल के राज्य पर बैठा कर प्रहारों के कारण जख्मी हुए तथा अधिकतर हाथियों से युक्त सैन्य के पीछे पीछे शनैः शनैः आ ही रहे हैं।

राजा—वसुंधरे ! यौगंधरायण से कहो कि मेरी प्रसन्नता का फल इसे दिखाओ।

वसुंधरा—जो महाराजा की आज्ञा।

[विजय वर्मा के साथ प्रस्थान।]

[कांचनमाला का प्रवेश।]

कांचन—महारानी की आज्ञा है कि जाओ कांचनमाले ! यह इन्द्रजालिक आर्यपुत्र को दिखाओ। (परिक्रमा कर देखते हुए) यह

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महाराज है। निकट चलूँ (निकट आकर) महाराज की विजय हो। महाराज ! देवी प्रार्थना कर रही है कि यह संवरण सिद्धि नामक इन्द्र-जालिक उज्जैन से आया है; उसे महाराज देखें।

राजा—हमें इन्द्रजालिक (जादू) में कुतुहल है। इसे शीघ्र ले आओ।

कांचन—जो आपकी आज्ञा। (बाहर जाकर मोरछल हाथ में लिये हुए इन्द्रजालिक के साथ प्रवेश करती है) महाराज। यह है इन्द्रजालिक।

इन्द्र—(निकट जाकर) महाराज की विजय हो। (मोरछल घुमाकर बारंबार हँसते हुये)

इन्द्रजालिक यह नाम जिसका रखा गया है ऐसे इन्द्र के चरणों में नमस्कार है। उसी प्रकार प्रथितयश शम्बर राक्षस को भी (नमस्कार है।) ॥७॥

कौशांबीपति। महाराज। अधिक क्या कहूँ।

पृथ्वीपर चन्द्रमा, आकाश में पर्वत, जल में ज्वलंन (आग) मध्यान्ह में सन्ध्या दिखाऊँगा। आज्ञा दें ॥८॥

वसंतक—मित्र ! सावधान हो जाओ। अवष्टम्भ (रंग ढंग) ऐसा है कि सब कुछ संभव प्रतीत होता है।

इन्द्र—अधिक प्रलाप से क्या लाभ ! देव। आप जो कुछ देखना चाहेंगे उसे मैं गुरुमंत्र के प्रसाद से दिखाऊँगा ॥९॥

राजा—भद्र जरा रुको ! कांचनमाले। देवी से कहो कि यह इन्द्र जालिक तुम्हारा ही है। यह प्रदेश भी निर्जन कर दिया है। आओ साथ ही देखेंगे।

कांचन—जो महाराज की आज्ञा। (जाकर वासवदत्ता के साथ पुनः प्रवेश करती है।)

वासव—कांचनमाले ! उज्जैन से आया है, इसलिये मुझे उस इद्रजालिक पर अभिमान है।

कांचन—महारानी को यह नैहर का अभिमान है। महारानी इधर से आयें।

[परिक्रमा करती हैं।]

वासव—(आगे बढ़कर) आर्यपुत्र की विजय हो।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—देवि ! इसने गर्जना बहुत की ! यहीं बैठकर एक साथ दोनों देखें ।

[वासवदत्ता बैठती है ।]

राजा—भद्रा (अपने) नाना प्रकार के इन्द्रजाल को आरम्भ करो ।

इन्द्र—जो महाराज की आज्ञा ।

[अनेक प्रकार गात्र विक्षेप कर मोरछल घुमाते हुए] ब्रह्मा विष्णु महेश प्रमुख देवगण, देवराज इन्द्र तथा आकाश में सिद्ध तथा विद्याधर बधुओं को नाचते हुए दिखाऊँगा ॥१०॥

[सब आश्चर्य से देखते हैं ।]

राजा—(ऊपर देख कर आसन से उतरकर) आश्चर्य है । आश्चर्य है ।

वसंतक—आश्चर्य है । आश्चर्य है ।

राजा—देवि ! देखो—

यह कमल पर ब्रह्माजी बैठे हैं । ये निशापति चन्द्रमा को मस्तक पर धारण किये शंकर है । ये धनुष, खड्ग, गदा, तथा चक्र इन चारों वस्तुओं को भुजाओं से धारण कर दैत्यान्तक विष्णु (दिखाई दे रहे हैं ।) देवि यह ऐरावत पर बैठा हुआ देवताओं का राजा इन्द्र है । ये अन्य देव हैं । और ये दिव्य स्त्रियाँ, जिनके चंचल हुए चरणों के नूपुर बज रहे हैं आकाश में नाच रही हैं ॥११॥

वासव—आश्चर्य है । आश्चर्य है ।

वसं०—ए दासी पुत्र इन्द्रजालिक ! इन देव और अप्सराओं को दिखाने से क्या होगा । यदि तुम्हें इस (उदयन) के सन्तुष्ट होने से काम है तो सागरिका को दिखाओ ।

[वसुंधरा का प्रवेश ।]

वसु—(राजा के पास जाकर) महाराज की विजय हो । अमात्य यौगंधरायण महाराज के चरण कमलों में यह निवेदन कर रहे हैं । कि विक्रम बाहु के प्रधान अमात्य वसु भूति मेरे द्वारा भेजे गये हैं । इसी सुमुहूर्त्त पर महाराज को उनसे मिलना उचित है । मैं भी शेष कार्य समाप्त कर आ ही रहा हूँ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वासव—आर्यपुत्र ! इन्द्रजाल रहने दो। मातुल (मामा) कुलसे प्रधान अमात्य वसुभूति आ गये। उन्हें आप देखें।

राजा—जैसा देवी कहें ! (इन्द्रजालिक से) भद्र। अब बस करो।

इन्द्र—(फिर मोरछल घुमाता है) जो महाराज की आज्ञा (जाते हुए) किन्तु महाराज मेरा एक खेल अवश्य देखें।

राजा—भद्र। ठीक। देखेंगे।

वासव—कांचनमाले ! तुम जाओ। इसे पुरस्कार दो।

कांचन—जो महारानी की आज्ञा।

[इन्द्रजालिक के साथ प्रस्थान।]

राजा—वसंतक ! सम्मुख जाकर वसुभूति को साथ ले आओ।

वसं०—जो महाराज की आज्ञा।

[प्रस्थान।]

वसंतक के द्वारा सम्मुख होकर सम्मानित वसुभूति तथा बाभ्रव्य का प्रवेश।

वसुभूति—(चारों ओर देखकर) अहो ! वत्सेश्वर का प्रभाव (आश्चर्य कारक) है क्योंकि—

(राजा के) जयकुंजर से खींचा गया, अत्यंत प्रिय घोड़ों को देखता हुआ, संगीत की ध्वनि से आकृष्ट हुआ, राजाओं की बातों में क्षणमात्र रुकता हुआ इस समय सिंहलेश्वर के वैभव को भूला हुआ तथा (प्रासाद) के एक कोने में (खड़ा हुआ) मैं द्वार के कुतूहल के द्वारा मानो ग्रामीण बना दिया गया हूँ ॥१२॥

बाभ्रव्य—आज चिरकाल के अनंतर स्वामि का दर्शन करूँगा। अतः सचमुच आनन्द की अधिकता से किसी दूसरी ही अवस्था का अनुभव कर रहा हूँ। क्योंकि

साध्वस के कारण कम्प की वृद्धि हो रही है। मद मेरी दृष्टि वाष्पजल से पुनः मंद हो रही है। मेरी अस्पष्ट वाणी गद्‌गद् होकर और भी जड़ हो रही है। इस प्रकार आज मेरा सन्तोष (मेरी) वृद्धावस्था की सहायता कर रहा है ॥१३॥

वसंतक—(आगे बढ़कर) अमात्य इधर से आयें।

वसुं—(विदूषक के गले में रत्नमाला देखकर जनांतिक) बाभ्रव्य !

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मैं समझता हूँ कि यह वही रत्नमाला है जो महाराज ने राजपुत्री को जाते समय दी थी।

बाभ्रव्य—अमात्य! सादृश्य तो है। क्या वसंतक से उसकी उत्पत्ति पूछूँ।

वसुं०—बाभ्रव्य! नहीं, नहीं। महान राजकुल में रत्नों की अधिकता से सादृश्य दुर्लभ नहीं है।

वसंतक—ये महाराज हैं अमात्य आगे हों।

वसुं०—(निकट जाकर) महाराज विजयी हों।

राजा—(उठकर) अभिवादन करता हूँ।

वसुं०—तुम्हारा अत्यंत कल्याण हो।

राजा—आर्य को आसन (लाओ)

वसं०—(आसन लाकर) यह आसन है। अमात्य बैठें।

[वसुभूति बैठता है।]

बाभ्रव्य—महाराज-बाभ्रव्य प्रणाम कर रहा है।

राजा—(पीठपर हाथ रखकर) बाभ्रव्य! यहाँ बैठो।

वसं०—अमात्य! महारानी वासवदत्ता प्रणाम कर रही हैं।

वासव—आर्य, प्रणाम करती हूँ।

वसु०—आयुष्मति! तुम वत्सराज सदृश पुत्र प्राप्त करो।

[सब बैठते हैं।]

राजा—आर्य वसुभूती! सिंहलेश्वर का कुशल तो है?

वसु०—(ऊपर देखकर तथा लम्बी साँस लेता हुआ) देव! मैं अभागा क्या कहूँ, समझ में नहीं आया। 'अधोमुख होता है'

वास०—(विषाद से स्वगत।) हा धिक्! हा धिक्! इस समय वसुभूति न जाने क्या कहेंगे?

राजा—वसुभूती! कहिये। क्यों इस प्रकार मुझे व्याकुल कर रहे हैं?

बाभ्रव्य—(जनांतिक चिरकाल रुक कर) जो कहना है उसे इसी समय कह दीजिये।

वसुंधरा—(आँखों में आँसूभर कर) देव! कहना संभव नहीं है फिर भी यह मैं अभागा कहता हूँ। सिंहलेश्वर की रत्नावली नामक एक आयुष्मती कन्या थी। सिद्ध की आज्ञा से उसके संबंध में यह

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कहा गया था कि जो इस कन्या से विवाह करेगा, वह सार्वभौम राजा होगा।

राजा—उसके पश्चात!

वसु—उस पर विश्वास रख कर महाराज के लिये यौगंधरायण द्वारा वारंवार मांगने पर भी सिंहलेश्वर ने वासवदत्ता के चित्त में होने वाले को खेद का विचार कर नहीं दी।

राजा—(जनांतिक) देवी! इस समय यह तुम्हारे मातुल का अमात्य क्या असत्य कह रहा है?

वासव—(विचार कर) आर्य पुत्र! मैं भी नहीं जानती कि असत्य कौन यहाँ बोल रहा है।

वसंतक—उसका क्या हुआ?

वसुभूति—तब 'किसी लवाणक देशनिवासी ने देवी को जला दिया' इस प्रवाद को प्रचलित कर महाराज ने सिंहलेश्वर के पास बाभ्रव्य को पुनः भेजा। और फिर उस (रत्नावली) की याचना की। उस समय सिंहलेश्वर ने सोचा कि महाराज से हमारा सम्बन्ध नष्ट न हो। अतः आपको समर्पित करने के लिए हम लोगों के द्वारा लाई जाती हुई वह रत्नावली समुद्र में नौका टूटने से डूब गई।

[रोता हुआ मुँह नीचा कर लेता है।]

वासव—(आँखों में आँसू भर कर) हाय! मैं अभागिनी मर गई। हाय बहिन रत्नावली। इस समय कहाँ हो। मुझसे बोलो।

[मूर्छित होती है।]

राजा—सावधान! सावधान! दैव की गति समझ में नहीं आती। वाहन के टूटने से डूब कर बचे हुये यह तुम्हारे लिए उदाहरण है। (वसुभूति तथा बाभ्रव्य को दिखाता है।)

वासव—आर्य पुत्र! ऐसा होता है। किन्तु मेरा इतना भाग्य कहाँ है।

राजा—(जनांतिक) बाभ्रव्य। यह क्या है, मैं सर्वथा नहीं समझ रहा हूँ।

बाभ्रव्य—देव सुनो।

[नेपथ्य में महान् कलकल।]

ज्वालाओं के समूह से प्रसादों को सुवर्ण शिखर की शोभा को

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धारण कराती हुई, घने उद्यान वृक्षों के चोटियों के जलने से अत्यन्त तीव्र संताप को सूचित कराती हुई क्रीड़ा पर्वत को धुएँ से सजल मेघों की तरह श्यामल बनाती हुई तथा दाह से स्त्रियों को पीड़ित करती हुई यह अग्नि अंतःपुर में सहसा लग गई है ॥१४॥

[सब घबड़ा कर देखते हैं।]

राजा—क्या अंतःपुर में आग (लग गई।) (घबड़ा कर उठते हुए) हाय ! देवी वासदत्ता जल गई।

सिंहल की राजधानी में देवी के जलाने का जो प्रवाद प्रचलित हुआ था उसे मानों सच करने के लिये यहाँ यह अग्नि उपस्थित हुई है ॥१५॥

वासव—आर्यपुत्र ! बचाओ। बचाओ।

राजा—अरे ! अत्यन्त घबराहट से पीछे हीं खड़ी हुई देवी को भी मैं देख न सका। (महारानी का हाथ पकड़ कर तथा आलिंगन कर) देवि। सावधान। सावधान।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र ! मैंने अपने लिये। अत्यन्त निर्दयी मेरे द्वारा यहाँ। अन्तःपुर में जंजीर से जकड़ी हुई सागरिका मर रही है। आर्यपुत्र बचाएँ।

राजा—देवि ! क्या सागरिका मर रही है ? यह (मैं) जा रहा हूँ।

वसुभूति—महाराज ! क्यों यह अकारण आपके द्वारा पतंग का आचरण किया जा रहा है ?

बाभ्रव्य—महाराज ! वसुभूति ने ठीक कहा है।

वसंतक—(राजा को उत्तरीय से पकड़कर) साहस मत करो।

राजा—(उत्तरीय को खींचता हुआ) अरे। धिक् मूर्ख। सागरिका मर रही है। क्या अब भी प्राण बचाए जाएँगे ? (अग्नि प्रवेश का अभिनय कर धूम से आक्रान्त होने का अभिनय करता है) हे अग्नि ! शान्त हो। धुएँ के संबध को छोड़ दो। क्यों यह ज्वालाओं का महान् जाल प्रगट कर रहे हो ? जो (मैं) प्रियतमा के प्रलय काल के अग्नि के के समान क्रान्ति वाले विरहाग्नि से न जला, उसका तुम (सामान्य अग्नि) क्या करोगे ॥१६॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बासव—दुःख देने वाली मेरी बातों से आर्य पुत्र ने ऐसा आचरण किया। मैं भी (उनका) अनुगमन करूँगी।

वसंतक—(परिक्रमा करते हुये आगे बढ़कर) मैं भी आपका मार्गोपदेशक होऊँगा।

वसुभूति—क्या वत्सराज आग में प्रविष्ट हो गये? मुझे भी, जिसने राजपुत्री की विपत्तियाँ देखी है, यहाँ अपनी आहुति देना उचित है।

बाभ्रव्य—(आँखों में आँसू भर) हा महाराज! क्यों अकारण ही आपने भरत कुल को (जीवन की) संशय तुलापर चढ़ा दिया। अथवा प्रलाप से क्या लाभ? मैं भी (अपनी) भक्ति सदृश आचरण करूँ।

[सब अग्निप्रवेश का अभिनय करते हैं।]

[जंजीर से जकड़ी हुई सागरिका का प्रवेश।]

सागरिका—(चारों ओर देखकर) हा धिक्। चारों ओर हुताशन प्रज्वलित हुआ है। आज (यह) हुताशन मेरे दुख का अवसान करेगा।

राजा—(शीघ्र समीप आकर) अरी प्रिये। क्यों अब भी उदासीन होकर रहती हो।

सागरिका—(राजा को देखकर स्वागत) क्या आर्यपुत्र हैं? इन्हें देखकर मुझे पुनः जीवन की अभिलाषा उत्पन्न हुई है। (प्रगट) महाराज। बचाओ।

राजा—भीरु। डरो मत।

मुहूर्तमात्र सहन करो। यह धूम समूह बहुत बड़ा है।

[सामने देखकर]

अरे रे। हा धिक्। तुम्हारे स्तन से गिरा हुआ यह वस्त्र जल रहा है।

[देखकर]

क्यों गिर रही। क्या जंजीर से जकड़ी गई हो।

[कमर बाँध कर]

मैं तुम्हें यहाँ से ले जाऊँगा। मेरा अवलंबन करो ॥१७॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(गले लगाकर आँखें बंद कर स्पर्श सुख का अभिनय करता हुआ) अहो । क्षणमात्र में मेरा सन्ताप नष्ट हो गया । प्रिये सावधान ।

प्रत्यक्ष संलग्न भी यह आग तुम्हें जला न सकेगी । क्योंकि प्रिये । तुम्हारा यह स्पर्श सन्ताप को नष्ट करता है ॥१८॥

(आँखें खोलकर तथा देखकर) अरे महान आश्चर्य है । कहाँ है वह प्रज्वलित अग्नि ? यह अन्तःपुर उसी प्रकार है । यह क्या है अनुमान नहीं किया जा सकता ।

वासव—(राजा के शरीर पर हाथ फेरती हुई) बधाई है । आर्यपुत्र शरीर से सुरक्षित हैं ।

राजा—यह बाभ्रव्य हैं—

बाभ्रव्य—महाराज की विजय हो । महाराज । बधाई है । हम लोग पुनः जीवित हो गये ।

राजा—यह वसुभूति हैं ।

वसुभूति—महाराज । बधाई है ।

राजा—मित्र !

वसन्तक—आपकी विजय हो ।

राजा—(सोचकर अनुमान करता हुआ)

[स्वप्न में मन घूम रहा है अथवा यह इन्द्रजाल है]

वसन्तक—सन्देह मत करो । यह इन्द्रजाल ही है । उस दासी पुत्र इन्द्रजालिक ने कहा था कि मेरा एक खेल महाराज के द्वारा अवश्य देखा जाना चाहिये । यह वही था ।

राजा—देवि ! तुम्हारे वचनों के कारण यह सागरिका मैं ले आया हूँ ।

वासव—(व्यंग्य से हँसकर) आर्यपुत्र ! तुम्हारा सब जान लिया ।

वसुभूति—(सागरिका को देखकर, जनांतिक) बाभ्रव्य ! यह राजपुत्री के समान है ।

बाभ्रव्य—अमात्य ! मेरे मन में भी यही है ।

वसुभूति—(प्रगट राजा के प्रति) महाराज ! यह कन्या कहाँ से आई ?

राजा—देवी जानती हैं ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वसुभूति—महारानी ! यह कन्या कहाँ से आई ?

वासव—अमात्य ! यह सागर (समुद्र) से प्राप्त हुई है यह कह कर अमात्य यौगंधरायण के द्वारा मेरे हाथ सौंपी गई थी। अतः एव सागरिका इस नाम से कही जाती है।

राजा—(स्वगत) क्या यौगंधरायण के द्वारा सौंपी गई। यह कैसे मुझे बिना बताये कुछ कर सकेगा।

वसुभूति—(जनांतिक) बाभ्रव्य ! वसन्तक के गले में उसके समान रत्नमाला तथा इस (कन्या) की भी समुद्र से प्राप्ति। इससे स्पष्ट है कि यह सिंहलेश्वर की कन्या रत्नावली है। (निकट जाकर तथा प्रगट) आयुष्मती, रत्नावली। तुम इस अवस्था को प्राप्त हुई।

सागरिका—वसुभूति को देखकर (आँखों में आँसू भरकर) क्या अमात्य वसुभूति हैं।

वसुभूति—हाँ ! मैं अमात्य मर गया।

[भूमि पर गिरता है]

सागरिका—हाँ ! मैं अभागिनी मर गई। हा तात ! कहाँ हो। मुझसे बोलो।

[अपने शरीर को गिराती हुई मूर्छित होती है।]

वासव—(घबरा कर) कंचुकि ! क्या यह मेरी भगिनिका रत्नावली है ?

बाभ्रव्य—देवि ! यही है वह।

वासव—(रत्नावली को आलिंगन कर) बहिन ! सावधान। सावधान।

राजा—क्या उदात्त वंश में उत्पन्न हुए सिंहलाधिपति विक्रम-बाहु की यह कन्या है ?

वसन्तक—(स्वगत) रत्नावली (माला) को देखकर मैंने पहले ही जान लिया था कि सामान्य मनुष्य का इस तरह का अलंकार नहीं होता है।

वसुभूति—(उठकर) राजपुत्री ! सावधान। सावधान। यह तुम्हारी ज्येष्ठ भगिनी दुखित है। उसे आलिंगन करो।

रत्नावली—होश में आ कर तथा राजा की ओर तिरछी नजर से

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से देखकर, (स्वगत) मैं अपराधिनी हूँ। महारानी को मुँह नहीं दिखा सकती। (अधोमुख होती है।)

वासव—(आँखों में आँसू भरकर तथा हाथ फैला कर) आओ। अतिनिष्ठुर। प्रिय बहिन। स्नेह दिखाओ। (गले लगाती है।)

(रत्नावली गिरने का अभिनय करती है।)

वासव—(जनान्तिक) आर्यपुत्र। अपनी इस नृशंसता से लज्जित हूँ। शीघ्र इसके इस बंधन को दूर करो।

राजा—(सन्तोष से) जो देवी कहें। सागरिका को बन्धन मुक्त करता है।

वासव—आर्यपुत्र! अमात्य यौगंधरायण के द्वारा अब तक मैं दुर्जन बनाई गई। यह (सब) जानते हुए भी जिसने मुझे न बताया।

[यौगंधरायण का प्रवेश।]

यौगंधरायण—मेरे वचनों के द्वारा महारानी का पति वियोग प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है। अन्य सपत्नी के संगठन से वह महारानी (मेरे द्वारा) अत्यन्त दुखित की गई। प्रभु को संसार के स्वामित्व का लाभ उसे सन्तुष्ट करेगा, यह सच है। किन्तु लज्जा के कारण मैं मुख नहीं दिखा सकता हूँ ॥१६॥

अथवा क्या किया जाय। स्वामी की भक्ति का व्रत इस प्रकार अत्यन्त माननीय लोगों पर भी निरपेक्ष होता है। (ध्यान से देखकर) ये देव महाराज हैं। निकट चलूँ। (निकट जाकर) महाराज की विजय हो। (पैरों पर गिरकर, देव! क्षमा करें) जो मैंने बिना बताए किया।

राजा—कहो। क्या बिना बताए किया।

यौगंधरायण—महाराज आसन पर बैठें। मैं सब निवेदन करूँगा।

[राजा के साथ सब यथा स्थान बैठते हैं।]

यौगंधरायण—देव! सुने! जो यह सिंहलेश्वर की कन्या है वह (एक) सिद्ध के द्वारा कही गई थी कि जो इससे विवाह करेगा वह सार्वभौम राजा होगा। उसके अनन्तर उसके विश्वास से महाराज के लिये बारंबार (हमारे द्वारा) प्रार्थित होते हुए भी सिंहलेश्वर ने महारानी वासवदत्ता के चित्त खेद का विचार कर जब न दी—

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—तब क्या ?

यौगंधरायण—(लज्जा से) तब किसी लावाणिक ने महारानी को आग से जला दिया इस प्रकार प्रवाद प्रचलित कर उसके (सिंहलेश्वर के) पास बाभ्रव्य को भेजा।

राजा—यौगंधरायण, उसके आगे मैंने सुन लिया है। किन्तु क्या सोचकर यह देवी के हाथ सौंपी गई।

वसन्तक— इसके के अभिप्राय को मैं जान गया। बिना कहे भी यह जाना जा सकता है कि अन्तःपुर में रहने वाली इसे अन्तःपुर में गये हुए महाराज (आप) सुख से देख सकेंगे।

राजा—यौगंधरायण, तुम्हारा अभिप्राय वसन्तक ने जान लिया।

यौगंधरायण—जो महाराज की आज्ञा।

राजा—मैं समझता हूँ कि इन्द्रजालिक की घटना तुम्हारा ही प्रयोग था।

यौगंधरायण—अन्यथा अन्तःपुर में बद्ध इसका महाराज को दर्शन कैसे हो सकता था और (पहले कभी) न देखी हुई इस (रत्नावली) का वसुभूति को ज्ञान कैसे हो सकता था। (हँसकर) पहिचानी हुई बहिन के प्रति जो करना है वह महारानी जानती है।

वासवदत्ता—(मुसकुरा कर) आर्य अमात्य ! स्पष्ट ऐसा क्यों नहीं कहते हो कि आर्यपुत्र को रत्नावली समर्पित कर दो। रत्नावली को अपने आभूषणों से अलंकृत कर तथा (उसका) हाथ पकड़कर राजा के निकट जाकर। देव। इस रत्नावली को स्वीकार करो।

राजा—(सहर्ष दोनों हाथ फैला कर) ! देवी के प्रसाद (अनुग्रह) को कौन अधिक नहीं मानता है ? (सागरिका को स्वीकार करता है।)

वासवदत्ता—आर्यपुत्र ! इसका नाभिकुल (नैहर) दूर है। ऐसा करना जिससे यह (अपने) बाँधवों का स्मरण न करें। (समर्पित करती है।)

राजा—जो देवी की आज्ञा।

वसन्तक—(सहर्ष नाचता है) इस समय पृथिवी प्रिय मित्र के में हैं।

वसु—राजपुत्र ! वासवदत्ता को प्रणामकर पूजा करो।

[रत्नावली वैसा करती है।]

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

DATE DUE
Class No. 822 Book No. ________
Accession No. 798
This book should be returned to the Library on the date la... ...fine of 0.6 nP. will be ...
is ...

...ो हो।
बोधित

...जा—क्या इससे भी कुछ प्रिय और है ? क्योंकि—

(मेरे द्वारा) विक्रम बाहु आत्म समान बना लिया गया। संसार की सारभूत यह प्रिया सागरिका जो संसार (के राज्य की) प्राप्ति का कारण है, (मुझे) प्राप्त हो गई। भगिनी के लाभ से देवी (वासवदत्ता) सन्तुष्ट हो गई। तुम्हारे समान अमात्य श्रेष्ठ के होने पर क्या नहीं है जिसकी मैं अभिलाषा करूँ ॥२०॥

तथापि यह हो।

इन्द्र अभीप्सित वर्षकर प्रचुर धनधान्य समृद्ध पृथ्वी को बनाएँ। विप्रवर्य यज्ञों के द्वारा देवताओं को विधिवत सन्तुष्ट करें। कल्पान्त तक सुख को बढ़ाने वाला सज्जनों से समागम हो तथा बज्रलेप के समान अजिक्य दुर्जनों की वाणी निःशेष शान्ति को प्राप्त हो ॥२१॥

[सब का प्रस्थान]

[इन्द्र जालिक नामक चतुर्थ अंक]

मुद्रक—ला पब्लिशिङ् हाउस, एम० एल० खरबन्दा।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें

१ काव्य कलानिधि	३।।)	१ चित्ररेखा	२)
२ भारत-गीत	≡)	२ बाल नाटक-माला	।)
३ राष्ट्रभाषा	।।)	३ बाल-कथा भाग २	।=)
मैथिली लोकगीत	४)	४ बाल विभूति	≡)
पद्मावत पूर्वार्द्ध	१), १।)	५ वीर पुत्रियाँ	।=)
स्त्री का हृदय	१।।)	६ तुलसी दर्शन	५)
७ नवीन पद्यसंग्रह	१।)	७ सरल नागरिक शास्त्र	४)
८ बिहारी-संग्रह	≡)	८ कृषि प्रवेशिका	१।)
सती करुणाकी			।।=)
हिन्दी पर			५)
ग्रामों का आर्थि		-पद्धति	१।=)
समाचार प[illegible] शब्दकोष	१[illegible]	[illegible] स्थायें	१)
अकबर [illegible] व्यवस्था	३)	१३ सरोवि[illegible] पदावली	३)
रसखान [illegible] काव्य	।।।)	१४ भट्ट [illegible]	१), १।।)
देव शब्द रस	२।।)	१५ बंगला [illegible] य को	१।।)
सरल शरीर	।।।) १।।)	१६ [illegible]	२।।)
प्रारम्भिक-र[illegible]	१[illegible]	कथायें	।।।)
सृष्टि की कथा		स्वयंबर	।।)

गोरखबानी—[illegible] डाक्[illegible]
महावंश—[illegible] आनन्द [illegible] ३)
भोजपुरी लो[illegible] गीत में करुणर[illegible] [illegible] साद सिं[illegible] ४)
राजस्थानी लोकगीत—स्व० सूय[illegible] ६)
सामान्य [illegible] ज्ञान—डा० [illegible] १।।)
काव्यप्रकाश [illegible] म्मटाचार्य, अनुवाद[illegible] [illegible] मिश्र ६)
कैलाश औ[illegible] मानसरोवर—स्वामी प्रणवान[illegible] ६)
[illegible]ोजपुरी [illegible] गीत—श्री कृ[illegible] १०)
[illegible]नुराग [illegible] पुरी—[illegible] एम० ५)
[illegible]वेचार विमर्श (निबंध-संग्रह)—श्री चन्द्रबली पांडे १।।)
[illegible]ाल इतिहास भाग १ तथा २—श्री भगवतशरण उपाध्याय २) १) १।।)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मत्स्य महापुराण

अनुवादक : रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

वेदों के बाद पुराण हमारी संस्कृति के गौरव प्रतीक हैं। उनमें ऐसे रत्न छिपे हुए हैं, जिनकी उपेक्षा पाश्चात्य विद्वानों से भी करते नहीं बन पड़ी। पुराणों में वर्णित भारतीय समाज की सब से पुरानी कहानियों की महत्ता इसलिये भी अतुलनीय है कि वह मनोरंजक होने के साथ-साथ जीवनदायिनी अनुभूतियों से ओतप्रोत, सरल, आडम्बर हीन, सुरुचिपूर्ण और उपदेशप्रद हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी उपयोगिता आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है।

मत्स्य महापुराण की प्रशंसा ऐतिहासिक विद्वानों ने भी इसलिए की है कि अन्य पुराणों की भांति इसमें किसी सम्प्रदाय विशेष की प्रशंसा और अन्य की निन्दा नहीं की गई है और न किसी विशेष सम्प्रदाय के हाथ में पड़ कर यह प्रचार का साधन ही बना है। इसमें मूर्ति कला, चित्र कला, राजनीति, कूटनीति, वास्तु विज्ञान, आयुर्विज्ञान, ज्योतिष आदि कला एवं वैज्ञानिक विषयों का भी सन्निवेश है। अनुवाद प्रामाणिक और प्रवाहपूर्ण है। साधारण पढ़े लिखे लोग भी इस से मूल ग्रन्थ का आनन्द उठा सकते हैं। पुस्तक प्रायः ८०० डबल क्राउन अठपेजी साइज में समाप्त हुई है। मूल्य २०)

जातक

[प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय खण्ड]

अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं; मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दर्य और शिक्षाप्रद होने में उनका मुकाबिला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान हैं।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या २८५, डिमाई साइज; सजिल्द मूल्य ६॥)
द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ४६४, डिमाई साइज; सजिल्द मूल्य ७॥)
तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या ४४८, डिमाई साइज; सुन्दर जिल्द मूल्य १०)

Maharshi Panini Sanskrit Vishvavidyalaya, Sri Sankaracharya Sanskrit

1082

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE